समानता की नींव पर

नाज़ फाउन्डेशन बनाम भारत सरकार व अन्य

भारत में यौनिक रूझान और जेन्डर पहचान का गैर अपराधीकरण

समानता की नींव पर

नाज़ फाउण्डेशन
बनाम
भारत सरकार व अन्य

भारत में यौनिक रूझान और जेन्डर पहचान का
गैर अपराधीकरण

crea

प्रकाशन
क्रिया, 2011

समन्वय
मीनू पान्डे, एस. विनीता

अनुवाद और समीक्षा
मीनू पान्डे, निधी अग्रवाल
स्मृति नेवटिया, सोमिंदर कुमार

प्रिंटिंग
एस.एस. क्रिएशन, नई दिल्ली

अंग्रेज़ी प्रकाशन
द राइट दैट डेयर्ज़ टू स्पीक इट्स नेम (2009)
लेखन और संकलन
अरविंद नरायन और मारकस एल्डरिज
ऑल्टरनेटिव लॉ फोरम
122/4 इन्फैन्ट्री रोड
बंगलूरु 560001, भारत
फोनः 91-80-22865757
ईमेलः contact@altlawforum.org

सौजन्य से
ऐस्ट्रया लेस्बियन फाउंडेशन फॉर जस्टिस
डच मिनिस्ट्री का एम.डी.जी.3 फंड
इंटरनैशनल प्लैन्ड पेरन्टहुड फेडरेशन

प्रतियों के लिए, सम्पर्क करें
क्रिया
7 मथुरा रोड, जंगपुरा बी
दूसरी मंज़िल, नई दिल्ली 110014
भारत
फोनः 91-11-2437 7707,
91-11-24378700/01
फैक्सः 91-11-24377708
ईमेलः crea@vsnl.net
www.creaworld.org

Published by
CREA, 2011

Coordinated by
Meenu Pandey, S.Vinita

Translation and Review
Meenu Pandey, Nidhi Agarwal
Smriti Nevatia, Sominder Kumar

Printing
S.S. Creation, New Delhi

Originally published in English
The Right that Dares to Speak its Name (2009)
Original text and compilation
Arvind Narrain and Marcus Eldridge
Alternative Law Forum
122/4 Infantry Road
Bangaluru 560001, India
Tel: 91-80-22865757
Email:contact@altlawforum.org

Supported by
Astraea Lesbian Foundation for Justice
Dutch Ministry's MDG3 Fund
International Planned Parenthood Federation

To get additional copies of this issue contact
CREA
7, Mathura Road, Jangpura B
Second floor, New Delhi- 110014
India
Tel: 91-11-2437 7707
91-11-24378700/01
Telefax: 91-11-24377708
Email: crea@vsnl.net
www.creaworld.org

विषय सूची

प्रस्तावना 1

परिचय 3

धारा 377 पर हुए निर्णय का विवरण 8

निर्णय किन क्षेत्रों में लागू होगा 29

टिप्पणियाँ

आज़ादी की राह पर 30
गौतम भान

यह फैसला हम सब के लिए है 34
प्रताप भानु मेहता

धारा 377, यौनिकता और नेहरू – संतानोत्पत्ति से परे 38
अपूर्वानंद

भारत : ज़िल्लतभरी ज़िंदगी के बाद 42
एक इज़्ज़तदार ज़िंदगी व्यतीत करने के
अधिकार तक का सफर
कल्पना कन्नाबिरन

ऐतिहासिक जीत 47
पिटारा

शब्दों का चमत्कार 50
लौरेन्स लियैंग, सिद्धार्थ

परिशिष्ट 58

क्रिया मुख्य रूप से महिलाओं के मानव अधिकारों और सभी के यौन अधिकारों के मुद्दों पर कार्य करती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए क्रिया नेतृत्व निर्माण, सामाजिक आंदोलनों को प्रभावित करने, विमर्श को आगे बढ़ाने और इनके हक में नीतियाँ बनाने के लिए माहौल तैयार करती है। एक द्विभाषी संस्था होने के नाते क्रिया पहचानती है कि हिन्दी भाषी सक्रियतावादियों और संस्थाओं के लिए यौनिकता, जेन्डर और मानव अधिकार पर बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। क्रिया की कोशिश है कि हिन्दी लिखित और अनुवादित प्रकाशनों के ज़रिए, यौनिकता, जेन्डर और अधिकार पर संसाधनों को उन समूहों तक पहुँचाया जाए जहां भाषा की सीमाओं की वजह से यह बहुत कम पहुंच पाए हैं।

यह प्रकाशन दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले को स्पष्ट करने की एक कोशिश है, जिसमें भारतीय दण्ड विधान की धारा 377 को असंवैधानिक करार देते हुए समलैंगिकता को गैर–अपराधिक ठहराया गया। यह ऐतिहासिक फैसला सम्मान, गोपनीयता, समानता और भेदभाव से मुक्ति की मज़बूत नींव पर खड़ा है और संवैधानिक अधिकारों की एक नई भाषा प्रदान करता है। नेहरू का कथन याद करते हुए कि शब्द चमत्कारी होते हैं, यह फैसला संवैधानिक नैतिकता जैसे सिद्धांतों को उजागर करता है। यह फैसला अधिकारों की भाषा को लोकतांत्रिक मूल के एक नए स्तर पर पहुंचाता है और सभी लोगों के अधिकारों को स्वीकारता है। इस संकलन में फैसले के सारांश के साथ हिन्दी लिखित और अनुवादित टिप्पणियां भी शामिल हैं।

इस प्रकाशन की कोशिश है कि इस फैसले को हिन्दी भाषी क्षेत्रों, सक्रियतावादियों, संस्थाओं और लेस्बियन, गे, बायसेक्शुअल

और ट्रांसजेन्डर लोगों तक पहुंचाना। इस प्रकाशन पर काम करते वक्त हमें इस फैसले पर हिन्दी में बहुत कम विचारात्मक लेख मिले। एल.जी.बी.टी. हकों पर हिन्दी में बहुत कम लिखा गया है। हम आशा करते हैं कि यह प्रकाशन यौनिकता पर उपलब्ध संसाधनों की कमी को कुछ हद तक पूरा करेगा।

क्रिया के प्रकाशन ऑर्डर करने के लिए हमें इस ईमेल पर लिखें–crea@vsnl.net। यह प्रकाशन 'द राईट दैट डेयरर्ज टू स्पीक इट्स नेम' का हिन्दी अनुवाद है। अंग्रेजी किताब, या कन्नड़, तमिल और बंगाली में उपलब्ध अनुवाद के बारे में आलटरनेटिव लॉ फोरम, बंगलूरू से जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

इस प्रकाशन पर आपका फीडबैक जानने के लिए हम उत्सुक हैं। हमें अपने विचार ज़रूर भेजें। हमें आशा है कि यह प्रकाशन आप उपयोगी पायेंगे।

2 जुलाई को दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा नाज़ फाउण्डेशन बनाम दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र व अन्य मामले में दिये गए फैसले से लेस्बियन, गे, बायसेक्शुअल और ट्रान्सजेन्डर (एल.जी.बी.टी.) समुदाय और कई आंदोलनों से जुड़े समुदायों में उत्साह की एक लहर छा गई। यह फैसला पुरज़ोर दावा करता है कि एल.जी.बी.टी. लोग भारत देश का एक अभिन्न हिस्सा हैं। साथ ही साथ यह फैसला बयान करता है कि न्यायपालिका आज भी एक ऐसी व्यवस्था है जो बहुसंख्यकवाद तर्क के द्वारा हाशिए पर रह रहे लोगों की सुरक्षा के लिए प्रतिबद्ध है। नाज़ फैसले से पहली बार, एल.जी.बी.टी. अधिकारों के ऊपर देश भर के ड्राइंग रूमों में, ऑफिसों में और चाय की दुकानों पर, बातचीत की शुरूआत हुई। एल.जी.बी.टी. लोग परदों के पीछे से बाहर आकर सीधा अखबारों के पहले पन्नों और टी.वी. पर आ पहुँचे। किसी न्यायायिक फैसले का ऐसा सामाजिक प्रभाव, जो कि राष्ट्रीय स्तर पर बातचीत की शुरूआत कर दे, बहुत अनूठा है। इसी में छुपा है नाज़ फैसले का जादू।

2009 में आया यह फैसला, एल.जी.बी.टी. सक्रियतावादियों के एक दशक के काम के बलबूते पर खड़ा है। हाल ही में 28 जून को, फैसले के एक हफ्ते पहले, दिल्ली, बंगलुरू और चेन्नई में हुए प्राईड कार्यक्रमों से एल.जी.बी.टी. संघर्ष स्पष्ट दिखाई दे रहा था। नाज़ फैसला प्राईड कार्यक्रमों के बाद आया। जबकि यह बात एक संयोग है, यह संकेत करती है कि धारा 377 के खिलाफ संघर्ष अनूठा इसलिए था क्योंकि कानूनी लड़ाई के साथ-साथ यह एक राजनैतिक मांग भी थी।

राजनैतिक मांग के रूप में धारा 377 के खिलाफ संघर्ष की शुरूआत हम 1993 को मान सकते हैं। इस समय एड्स भेदभाव विरोधी

आंदोलन (ए.बी.वी.ए.) ने पुलिस उत्पीड़न के खिलाफ एक विरोध आयोजित किया था। इस विरोध में सार्वजनिक रूप से धारा 377 को रद्द करने की बात पहली बार रखी गई थी। तब से एल.जी. बी.टी. समुदाय ने विरोधों, जुलूसों, तथ्य खोज रिपोर्टों, सम्मेलनों, फिल्म फेस्टिवलों और हाल ही के प्राईड जुलूसों के द्वारा जनता का ध्यान अपनी तरफ बरकरार रखा है।

कोर्ट में पहला संघर्ष हुआ 1994 में, जब ए.बी.वी.ए. ने धारा 377 को पहली कानूनी चुनौती दी। इस चुनौती का कारण था किरण बेदी का जेलों में कॉन्डम न बांटे जाने का निश्चय। बेदी का मानना था कि ऐसा करना धारा 377 के अंतर्गत जुर्म होगा। लेकिन ए.बी.वी.ए. की यह याचिका खारिज कर दी गई क्योंकि ए.बी.वी.ए. ग्रुप ही नहीं रहा।

2001 में नाज़ फाउण्डेशन के द्वारा फाईल की गई धारा 377 को चुनौती देने वाली याचिका, अगली अहम गतिविधि थी। नाज़ याचिका की अनूठी बात यह है कि यों तो इसकी शुरूआत एक एन.जी.ओ. की कानूनी याचिका के रूप में हुई, धीरे–धीरे इस याचिका ने एल.जी.बी.टी. समुदाय और समाज के कई हिस्सों में बहुत समर्थन पाया। इस तरह नाज़ याचिका के ऊपर एक पूरे समुदाय की उम्मीद का भार था। समुदाय के लोग हर कानूनी मोड़ को बहुत दिलचस्पी से देख रहे थे। शुरूआत में एल.जी. बी.टी. समुदाय को कानूनी गतिविधियों से परिचित रखने के लिए समय समय पर लॉयर्ज़ कलेक्टिव (नाज़ फाउण्डेशन के वकील) सम्मेलन आयोजित करते रहे। इसके साथ एल.जी.बी.टी. लिस्टसर्व पर भी बातचीत चलती रही। पर कुछ ही समय बाद मीडिया इस याचिका में काफी रूचि लेने लगा और इस पर नियमित रिपोर्टिंग होने लगी। इस ''जन हित मुकदमे'' को जन स्वरूप देने का श्रेय लॉयर्ज़ कलेक्टिव को जाता है, जिन्होंने मुकदमे के हर चरण पर सामुदायिक परामर्श की प्रक्रिया की शुरूआत की।

नाज़ फाउण्डेशन याचिका, जिसे एल.जी.बी.टी. समुदाय बहुत उत्सुकतापूर्वक देख रहा था, के सफर में हुई बहुत सी तबदीलियों और मोड़ में से कुछ थे :

2002	जॉइंट ऐक्शन कन्नूर (जैक) ने धारा 377 को बनाए रखने के समर्थन में कोर्ट में हस्तक्षेप जारी किया। इस हस्तक्षेप का कहना था कि एच.आई.वी. की वजह से एड्स नहीं होता, और एच.आई.वी. को फैलने से रोकने के लिए इस कानून की ज़रूरत है।
2003	भारत सरकार (गृह मंत्रालय) ने धारा 377 को बनाए रखने के समर्थन में कोर्ट में शपथ-पत्र दायर किया। इस शपथ-पत्र में कहा गया था कि अपराधिक कानून को सामाजिक नैतिकता का प्रतिबिंब होना चाहिए और यह भी कि भारतीय समाज समलैंगिकता को अस्वीकार करता है।
2004	दिल्ली उच्च न्यायालय ने इन विचारों को चुनौती देने वाली पुनर्विचार याचिका को ठुकरा दिया।
2006	नाज़ फाउण्डेशन की अपील पर, सुप्रीम कोर्ट ने यह मामला दिल्ली उच्च न्यायालय में वापस भेजा और पुनः सुनवाई का आदेश दिया।
2006	नाको ने एक शपथ-पत्र दायर किया जिसमें कहा गया कि धारा 377 के अमल से एच.आई.वी. रोकथाम कार्य में बाधा पड़ती है।
2006	बी.पी. सिंघल ने हस्तक्षेप दायर किया जिसमें कहा गया कि समलैंगिकता भारतीय संस्कृति के खिलाफ है और इस कानून को कायम रखने की ज़रूरत है।
2006	वॉयसेज़ अगेन्स्ट 377 ने याचिका के समर्थन में एक हस्तक्षेप दायर किया जिसमें कहा गया कि धारा 377 एल.जी.बी.टी. लोगों के मूल अधिकारों का उल्लंघन करती है।
2008	सी.जे. शाह और जे. मुरलीधर के सामने मामला अंतिम बहस के लिए आया।
2009	2 जुलाई – फैसला सुनाया गया।

जैसा कि इस समयावली से देखा जा सकता है, एड्स को नकारने वाला एक ग्रुप, जैक, और बी.जे.पी. के भूतपूर्व राज्य सभा एम.पी. बी.पी. सिंघल के हस्तक्षेप, इस कानून के विरूद्ध संघर्ष में महत्वपूर्ण कदम थे। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि धारा 377 के खिलाफ संघर्ष में न केवल राज्य को ध्यान में रखना ज़रूरी था, बल्कि समाज, जिसमें हिन्दू राईट और एड्स को नकारने वाली आवाज़ें शामिल थीं, से भी निपटना था। 2006 में नाज़ फाउण्डेशन याचिका को और मज़बूत बनाने के लिए, बाल, महिला और क्वीयर[1] अधिकारों पर काम करने वाले गुटों के एक गठबंधन, वॉयसेज़ अगेन्स्ट 377 ने कोर्ट में धारा 377 को ''रीड डाउन''[2] करने के समर्थन में हस्तक्षेप दायर किया।

इस तरह, जब चीफ जस्टिस शाह और जस्टिस मुरलीधर की बेन्च ने 2008 में दिल्ली उच्च न्यायालय में अंतिम बहस सुनी, तो उन्हें विभिन्न रायों के साथ संघर्ष करना पड़ा। इन सभी रायों को सुनने और उन पर विचार करने के बाद यह फैसला सुनाया गया है। जबकि अंतिम बहस नवम्बर 2008 में खत्म हो चुकी थी, यह फैसला जुलाई 2, 2009 को सुनाया गया। दो वजहों से इस फैसले का उत्सुकता से इंतज़ार किया जा रहा था – यह फैसला एल.जी.बी.टी. समुदाय के लिए क्या करेगा और यह फैसला भारतीय संवैधानिक कानून के लिए किस तरह का संकेत पेश करेगा? दोनों प्रसंगों में इस फैसले ने निराश नहीं किया। जैसा कि एक सक्रियतावादी ने कहा, ''ऐसा लगा जैसे कि हमारे कंधों पर से भार उठ गया हो और हमें आज़ाद कर दिया गया हो।'' कानूनी अकादमी सदस्यों ने ध्यान दिलाया कि नाज़ का फैसला गैर-भेदभाव कानूनों में नई व्याख्याएँ ला सकता है।

---

1 एक ऐसा शब्द जिसमें वे सभी लोग व नज़रिए भी शामिल हैं जो मुख्यधारा द्वारा मान्य जेन्डर और यौनिकता की परिभाषाओं को चुनौती देते हैं।

2 धारा 377 समलैंगिकता और बाल यौन शोषण को आपराधिक करार देता है। क्योंकि अभी बाल यौन अपराध के लिए अलग कानून नहीं है, इसलिए यह याचिका धारा 377 को खारिज करने की मांग नहीं कर रही थी। यहाँ माँग धारा 377 को रीड डाउन करने थी, जिससे समलैंगिकता गैर आपराधिक हो सके।

चाहे इस फैसले का प्रभाव कितना ही बड़ा हो, कभी-कभी कानूनी भाषा की सीमाओं की वजह से, इस फैसले के बहुत लोगों तक पहुँचने में बाधा बन जाती है। इस संकलन की कोशिश है कि दिल्ली उच्च न्यायालय के इस फैसले के स्वरूप, तर्क-वितर्क की समझ, ज़्यादा लोगों तक पहुंचे और नाज़ फैसले के अर्थ को समझा जा सके। कोशिश है कि यह संकलन नाज़ फैसले को प्रासंगिक और स्पष्ट बना सकेगा और फैसले की समझ को भी बढ़ा सकेगा।

यह संग्रह दो हिस्सों में बंटा है। पहले अंश में फैसले के अलग अलग भाग का योजनाबद्ध गाईड दिया गया है। दूसरे भाग में विचारात्मक लेख हैं जो कि फैसला आने के तुरंत बाद लिखे गए थे। यह लेख फैसले को एक बड़े ऐतिहासिक कैन्वस पर प्रासंगिक करने की कोशिश करते हैं और फैसले के मुख्य पहलुओं को समझाने की कोशिश भी करते हैं।

भारतीय दण्ड विधान की धारा 377 पर ऐतिहासिक निर्णय की प्रक्रिया का विवरण

निर्णय

नाज़ फाउण्डेशन बनाम भारत सरकार व अन्य
रिट् याचिका (सी) 7455/2001 – निर्णय की तारीख : 2 जुलाई 2009

धारा 377 के कानून का संक्षिप्त ब्यौरा

भारतीय दण्ड विधान की धारा 377 को लॉर्ड मैकॉले ने तैयार किया और इसे ब्रिटिश उपनिवेशी शासन के दौरान 1860 में लागू किया गया। भारतीय दण्ड विधान की धारा 377 को ''अप्राकृतिक अपराधों'' के उपअध्याय में शामिल किया गया। इस धारा में लिखा है किः

> ''**377 : अप्राकृतिक अपराध** – किसी भी पुरुष, महिला या जानवर के साथ अप्राकृतिक रूप से शारीरिक संबंध बनाने वाले व्यक्ति को आजीवन कारावास का दण्ड दिया जा सकता है, या 10 वर्ष तक की समयावधि के लिए जेल में डाला जा सकता है। साथ ही इस व्यक्ति को जुर्माना भरने का दण्ड भी दिया जा सकता है।
>
> ''व्याख्या – इस धारा में वर्णित अपराध में संभोग माने जाने के लिए श्िश्न का प्रवेश काफी है''।

कानून में 'अप्राकृतिक रूप से यौन संबंध बनाना या संभोग करने' को अपराध माना गया है। न्यायपालिका ने योनि में शिश्न के प्रवेश के अलावा हर तरह की काम-क्रिया को इस अपराध का हिस्सा माना है। इसमें गुदा सैक्स, मौखिक सैक्स और यहाँ तक कि यौन साथियों द्वारा परस्पर एक दूसरे का हस्तमैथुन करना भी शामिल है। असल में इस कानून का प्रयोग लगभग हमेशा ही केवल समलैंगिक लोगों और दूसरे

अल्पसंख्यक यौन समूहों के विरुद्ध किया जाता रहा है और इसे समलैंगिक महिलाओं, पुरुषों, द्विलिंगियों और अंतरलिंगी लोगों को डराने-धमकाने और सताने के हथियार के रूप में प्रयोग किया जाता रहा है।

मामले से संबंधित पक्ष

याचिकाकर्ता **नाज़ फाउण्डेशन** पुरुषों के साथ सैक्स करने वाले पुरुषों के समुदाय के बीच एचआईवी/एड्स की रोकथाम पर काम करने वाली और एक गैर-सरकारी संस्था है। नाज़ ने धारा 377 की संवैधानिकता को चुनौती देते हुए एक जनहित याचिका दायर की। इनका तर्क था कि इस कानून के कारण जन स्वास्थ्य के संदर्भ में एचआईवी/एड्स से जुड़े काम पर विपरीत असर पड़ता है और इसी कारण से पुरुषों के साथ संबंध रखने वाले पुरुषों के समुदाय के स्वास्थ्य के अधिकार के आड़े आता है।

इस मामले में **भारत सरकार** का प्रतिनिधित्व **गृह मंत्रालय** और **परिवार कल्याण एवं स्वास्थ्य मंत्रालय** ने किया। न्यायालय को यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ कि दोनों मंत्रालयों ने इस मामले में अलग-अलग विचार प्रस्तुत किए। गृह मंत्रालय ने धारा 377 का समर्थन किया तो वहीं स्वास्थ्य मंत्रालय ने याचिकाकर्ता द्वारा जन स्वास्थ्य के तर्क का पक्ष लेते हुए धारा 377 का विरोध किया। गृह मंत्रालय का यह तर्क था कि कानून को समाज से अलग करके नहीं देखा जा सकता और भारतीय दण्ड विधान की धारा 377 से भारतीय समाज के मूल्य और नैतिकता से मेल खाती है।

स्वास्थ्य मंत्रालय के एक उपविभाग **राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण संगठन (नैको)** ने नाज़ फाउण्डेशन की याचिका के विचारों को सही ठहराते हुए एक शपथपत्र दायर किया। इसमें कहा गया कि धारा 377 के कारण वास्तव में एचआईवी/एड्स की जानकारी व रोकथाम के प्रयासों पर विपरीत असर पड़ता है। नैको ने कहा कि धारा 377 के जारी रहने के कारण समाज में अधिक जोखिम वाली गतिविधियाँ चोरी छिपे की जाती हैं और यूँ इन

वर्गों को आवश्यक जानकारियाँ और सेवाएँ उपलब्ध करा पाना बहुत ही कठिन हो जाता है।

वॉयसेज़ अगेन्स्ट 377 महिला अधिकारों, बाल अधिकारों और एलजीबीटी लोगों के 12 समूहों का मिला-जुला गठबंधन है, जो धारा 377 द्वारा एलजीबीटी लोगों की ज़िन्दगियों को आपराधिक समझे जाने को समाप्त करने के प्रति समर्पित है। अपने शपथपत्र में इस समूह ने भी इसी तर्क को आगे बढ़ाया कि धारा 377 के कारण समलैंगिक इच्छाएं रखने वाले लोगों को अपराधी माना जाता है और इस कानून के जारी रहने के कारण एलजीबीटी समुदाय के मौलिक अधिकारों के हनन का माहौल बनता और पनपता है।

भारतीय जनता पार्टी के एक पूर्व राजनेता, **श्री बी.पी. सिंघल** ने भी एक शपथपत्र दायर किया और यह विचार प्रस्तुत किया कि भारतीय समाज में समलैंगिकता को अनैतिक, घिनौना और भारतीय समाज की सांस्कृतिक मान्यताओं के विपरीत समझा जाता है और इसलिए समलैंगिकता को अपराध मानना जायज़ है।

ज्वाइंट एक्शन कमेटी, कन्नूर (जैक) ने नाज़ फाउण्डेशन और नैको द्वारा प्रस्तुत विचारों का विरोध करते हुए एक शपथपत्र दायर किया और यह कहा कि धारा 377 के कारण एचआईवी/एड्स की रोकथाम तथा उपचार कार्यों में कोई बाधाएँ नहीं आती हैं। इनका मूल तर्क था कि धारा 377 के कारण एचआईवी के फैलाव की रोकथाम में सहायता मिलती है, क्योंकि इस कानून की मौजूदगी के कारण लोग जोखिमपूर्ण यौन गतिविधियां करने से डरते हैं। जैक ने इस बात से भी इंकार किया कि एचआईवी के कारण एड्स रोग होता है।

इस याचिका के अन्य पक्षों में **राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली की सरकार, दिल्ली राज्य एड्स नियंत्रण सोसायटी** और **दिल्ली पुलिस कमिश्नर** भी शामिल थे लेकिन इन पक्षों ने कोई शपथ-पत्र या लिखित बयान अदालत के सामने प्रस्तुत नहीं किया।

न्यायपीठ का ब्यौरा

इस मामले को दिल्ली उच्च न्यायालय के दो न्यायाधीशों के न्यायपीठ के सामने पेश किया गया जिसमें शामिल थे **मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति ए. पी. शाह** तथा **न्यायमूर्ति डा. एस. मुरलीधर।**

मुख्य न्यायाधीश, न्यायमूर्ति शाह ने बोलने और विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता, पर्यावरण से जुड़े अधिकारों, विकलांग लोगों के अधिकारों और महिला अधिकारों जैसे विषयों पर बहुत से महत्वपूर्ण न्यायिक निर्णय लिखे हैं। *आनन्द पटवर्धन बनाम भारत सरकार,* 1977 (1) बीसीआर 90, तथा *आनन्द पटवर्धन बनाम भारत सरकार,* 1997 (3) बीसीआर 438 मामलों में इन्होंने राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित 'इन मैमोरी ऑफ फ्रैन्ड्स' (पंजाब में आतंकवाद तथा हिंसा के विषय पर आधारित) और 'राम के नाम' (अयोध्या मामले पर आधारित) डॉक्युमेन्ट्री को टेलीविज़न पर प्रसारित न करने के सरकारी आदेशों को रद्द करते हुए, दूरदर्शन को इन्हें प्रसारण करने का निर्देश दिया था। इन्होंने हाल ही के गुजरात में हुए कौमी दंगों के विषय पर बनाई गई डॉक्युमेन्ट्री, 'आक्रोश' को जारी न करने के निर्णय को भी गलत ठहराते हुए, आदेश दिया कि इस फिल्म को सेंसर बोर्ड द्वारा प्रमाण पत्र दिया जाए।

दिल्ली उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति से पहले न्यायमूर्ति मुरलीधर, मानवाधिकारों के क्षेत्र में वकील रहे हैं और इन्होंने राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के अधिवक्ता के रूप में भी काम किया है। वे उच्चतम न्यायालय की वैधानिक सेवा समिति में सक्रिय अधिवक्ता रहे और बाद में दो बार इस समिति के सदस्य के रूप में भी नियुक्त हुए। इन्होंने भोपाल गैस त्रासदी से पीड़ित लोगों और नर्मदा नदी पर बनाए जा रहे बाँध के कारण विस्थापित हुए लोगों के न्यायायिक मामलों में निःशुल्क सेवाएँ दीं। उच्चतम न्यायालय ने अनेक जनहित याचिकाओं और फांसी की सज़ा पाए अपराधियों के मामलों में इनको कई बार *'एमिकस क्यूरी',* अर्थात न्यायालय के मित्र के रूप में नियुक्त किया गया।

निर्णय का ब्यौरा

न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि दो वयस्कों के बीच एकांत में आपसी सहमति से होने वाले यौन संबंधों को आपराधिक मानना संविधान द्वारा दी गयी गारंटियों का उल्लंघन है, जैसे आदर और समानता के अधिकार और यौन प्रवृत्तियों के आधार पर भेदभाव से स्वतंत्रता (अनुच्छेद 21, 14 व 15)। इस तरह न्यायाधीशों ने धारा 377 में तबदीली करते हुए इसकी व्याख्या इस तरह से की कि अब इसके अंतर्गत एकांत में आपसी सहमति के साथ दो वयस्कों के बीच किए गए सैक्स को आपराधिक नहीं समझा जाएगा।

लेकिन अपने निर्णय में न्यायाधीशों ने यह भी कहा कि आपसी सहमति के बिना वयस्कों के बीच किए जाने वाले सैक्स और बच्चों के साथ किए जाने वाले किसी भी तरह के सैक्स के विरुद्ध, धारा 377 जारी रहेगी। न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि 18 वर्ष से ऊपर के व्यक्ति को वयस्क माना जाएगा जबकि 18 वर्ष से कम आयु के व्यक्ति को किसी तरह की यौन गतिविधि या सैक्स के लिए अपनी सहमति देने के योग्य नहीं समझा जाएगा।

साथ ही न्यायालय ने टिप्पणी दी कि इस कानून के बारे में की गई यह व्याख्या, संसद द्वारा विधि आयोग की 172वीं रिपोर्ट के सुझावों को लागू कर दिए जाने तक जारी रहेगी। इनमें बलात्कार से संबंधित कानूनों में संशोधन करने और धारा 377 को खारिज किए जाने की सिफारिशें शामिल हैं।

न्यायालय ने यह भी स्पष्ट किया कि इस निर्णय के कारण धारा 377 के अंतर्गत पहले तय हो चुके आपराधिक मामलों पर दोबारा सुनवाई आरंभ नहीं की जाएगी।

निर्णय का आधार

न्यायाधीशों ने अपने निर्णय में आदर, गोपनीयता, समानता तथा भेदभाव से मुक्ति के अधिकारों की पुष्टि करने वाले, भारत में और कई दूसरे देशों में हुए अनेक प्रगतिवादी निर्णयों का

बार-बार उल्लेख किया है। यही चार सिद्धांत इस निर्णय के आधार हैं। हर व्यक्ति के आदर की सुरक्षा के लिए यह ज़रूरी है कि उसे अपने निजी मामलों में राज्य के निरंकुश हस्तक्षेप से सुरक्षा मिल सके। इसी तरह समानता का सिद्धान्त तब तक अर्थहीन होगा जब तक कि कुछ विशिष्ट वर्ग के लोगों के विरुद्ध भेदभाव किए जाने पर रोक न लगाई जाए।

समलैंगिक यौन व्यवहार धार्मिक रूप से सही या गलत है या नहीं, इस बहस से हटकर न्यायाधीशों ने 'संवैधानिक नैतिकता' की एक नई धारणा सामने रखी है। मुख्य रूप से उनका कहना है कि सरकार को केवल संविधान में बताए गए धर्मनिरपेक्ष मूल्यों से ही मतलब रखना चाहिए और उसका किसी भी विशिष्ट धर्म के नैतिक मूल्यों से कोई सरोकार नहीं होना चाहिए।

सम्मान / गोपनीयता

निर्णय के आरंभ में न्यायालय ने मानवीय सम्मान को एक ऐसे दृष्टिकोण से देखा है जिसके अंतर्गत इस बात को महत्व दिया गया है कि हर व्यक्ति अपनी जीवन शैली से जुड़ी बातें खुद तय कर सके।

> ''कम से कम इतना तो पूरी तरह स्पष्ट है कि संविधान में प्रदान हर व्यक्ति के सम्मान की सुरक्षा को देखते हुए, हमें अपने समाज के सभी सदस्यों के मूल्य और योग्यता को स्वीकार करना होगा। इसके चलते, हर व्यक्ति को एक ऐसा स्वतंत्र प्राणी माना गया है जो अपनी इच्छा के अनुसार अपने शरीर और मन का विकास कर सके। सम्मान की भावना का आधार है व्यक्तिगत इच्छा की स्वायत्तता और अपनी इच्छा से काम कर पाने की स्वतंत्रता। मानवीय सम्मान की भावना का मूल आधार है इन्सान की शारीरिक और आध्यात्मिक समेकता, उसकी मानवीयता और एक व्यक्ति के रूप में उसके मूल्य को स्वीकार करना, भले ही वह दूसरे व्यक्तियों के लिए उपयोगी हो या नहीं''। (परिच्छेद 26)

सम्मान की इस संकल्पना को आधार बनाकर न्यायालय ने गोपनीयता का एक ऐसा सिद्धान्त तैयार किया जिसमें ''स्थान की अपेक्षा व्यक्ति'' पर ध्यान दिया जाता है। (परिच्छेद 47) यानि इस अधिकार का अर्थ केवल यह नहीं है कि किसी व्यक्ति को अपने घर जैसे ''व्यक्तिगत स्थान'' पर कुछ भी करने का अधिकार हो, बल्कि इसमें अपने जीवन को जीने के बारे में निर्णय लेने का अधिकार भी शामिल है। गोपनीयता से व्यक्तिगत स्वायत्तता को सुरक्षा मिलती है।

सम्मान-स्वायत्तता के इस विचार में यौन संबंधी अधिकार भी शामिल है, जिसके अंतर्गत अपनी इच्छा से, नाजायज़ सरकारी दखल के बिना, अपने यौन साथियों का चुनाव कर पाने का अधिकार है। न्यायविदों ने इस विषय को स्पष्ट करने के लिए, *गे और लेस्बियन लोगों की समानता के लिए राष्ट्रीय गठबंधन बनाम न्यायमंत्री* के मामले में, दक्षिण अफ्रीका के संवैधानिक न्यायालय द्वारा कही गई बातों का विस्तार से उल्लेख किया :

> ''गोपनीयता का अर्थ यह है कि हम सभी को व्यक्तिगत रूप से अंतरंगता और स्वायत्तता का अधिकार है जिसके आधार पर हम बाहरी समाज के दखल के बिना, मानवीय संबंध बना सकें और इनका पालन कर सकें। अपनी यौनिकता को अभिव्यक्त करने के तरीके का चयन इस पूरे विचार का केन्द्र बिन्दु है। कोई भी व्यक्ति अगर दूसरे को नुकसान पहुँचाए बिना, सहमति से अपनी यौनिकता व्यक्त करे, तो ऐसे में किसी भी तरह का दखल उसकी गोपनीयता का उल्लंघन होगा''। (परिच्छेद 40)

> ''हर व्यक्ति के अंदर, चाहे वह समलैंगिक हो या नहीं, जेंडर और यौनिकता की भावना इतनी गहरी समायी होती है कि व्यक्ति अपनी पहचान के इस आयाम को हर जगह अपने साथ लेकर चलता है। कोई व्यक्ति जेंडर या यौन प्रवृतियों के बारे में अपनी भावनाओं को घर पर, पीछे छोड़ कर नहीं आ सकता। हर व्यक्ति के इस

> विशिष्ट मूल्य को पहचानते हुए, संविधान यह नहीं मानता कि अधिकारों का हकदार कोई व्यक्ति एक अकेला या अस्पष्ट आकृति है, जो समाज से अलग, अपनी अस्मिता को साथ लिए चलता है। संविधान मानता है कि लोग अपने शरीर, अपने समुदायों, अपनी संस्कृतियों, अपने स्थान और अपने समय में निवास करते हैं। यौनिकता को ज़ाहिर करने के लिए एक वास्तविक या काल्पनिक साथी की आवश्यकता होती है। साथी का चुनाव करना या चुनाव करने में सहायता करना राज्य का काम नहीं है, बल्कि साथी का चुनाव व्यक्तियों को खुद करना होता है''। (परिच्छेद 47)

उच्चतम न्यायालय द्वारा इससे पहले दिए गए कई निर्णयों के आधार पर, इस मामले में न्यायाधीशों ने सम्मान और गोपनीयता के अधिकारों को जीवन और स्वतंत्रता के अधिकारों में निहित माना, जिनकी गारंटी भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत दी गई है। ऐसा इसलिए, कि जीवन जीने के अधिकार में अपने जीवन को अपनी तरह से जीने का अधिकार भी शामिल है।

> ''भारतीय संविधान में आदर के साथ जीवन जी पाने और गोपनीयता के अधिकार, दोनों को अनुच्छेद 21 के भाग के रूप में स्वीकार किया गया है। भारतीय दण्डविधान की धारा 377, एक व्यक्ति की यौनिकता के आधार पर उसके आदर के अधिकार का हनन करती है और उसकी बुनियादी पहचान को आपराधिक मानती है और यूँ इससे संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन होता है। अपने वर्तमान स्वरूप में भारतीय दण्डविधान की धारा 377 किसी समलैंगिक व्यक्ति को अपने जीवन को पूरी तरह से जीने का वह अधिकार नहीं देती, जिसका वर्णन संविधान के अनुच्छेद 21 में स्पष्ट रूप से किया गया है''। (परिच्छेद 48)

इस तरह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि धारा 377

संविधान का उल्लंघन करती है, न केवल इसलिए कि यह एकान्त में किए जा रहे कामों को आपराधिक मानती है बल्कि इसलिए भी कि इस धारा के अंतर्गत निजी पसंद को भी, जिसका सम्मान करना व्यक्तिगत आदर का विशेष पहलू है, आपराधिक माना जाता है। इसलिए न्यायालय मानता है कि धारा 377 से उस गोपनीयता के अधिकार का उल्लंघन होता है, जिसका स्थान-संबंधी पहलू भी है और निर्णय-संबंधी पहलू भी। किसी स्थान और अपने निर्णय के अंतर्गत निर्धारित किया जा सकता है। इस विस्तृत तरीके से गोपनीयता को समझें, तो इसका उल्लंघन मानवीय सम्मान का भी अतिक्रमण है।

आगे चलकर, कई और अध्ययनों और रिपोर्टों का हवाला देते हुए बताया गया है कि यदि धारा 377 को कानूनी रूप से लागू न किया जाए, तो भी यह समलैंगिक व्यक्तियों के आदर का अतिक्रमण करती है। धारा 377 समलैंगिक व्यक्तियों के आत्म-सम्मान को ठेस पहुँचाती है, और पुलिस और बाकी समाज द्वारा उनके उत्पीड़न को बढ़ावा देती है। न्यायालय के शब्दों में :

> ''समलैंगिकता को आपराधिक मान लिए जाने से समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग हमेशा के लिए निंदा का पात्र बन जाता है। कानून लागू करने वाली राज्य की मशीनरी के हाथों उत्पीड़न, शोषण, शर्मिन्दगी तथा क्रूर व नीचा दिखाने वाले के व्यवहार का सामना करते हुए, अपना जीवन व्यतीत करने को बाध्य हो जाता है''। (परिच्छेद 52)

न्यायाधीशों ने इस संबंध में याद दिलाया कि किस तरह उपनिवेशी काल के आपराधिक जनजाति अधिनियम के अंतर्गत हिजड़ा समुदाय को अपराधी माना गया था, और इसे यौनिक अल्पसंख्यकों को अपराधी ठहराने का भयावह उदाहरण बताया। यदि इन्हें वास्तविक रूप में लागू न भी किया जाए, तो भी धारा 377 जैसे कानूनों से समाज का एक पूरा वर्ग कलंकित हो जाता है, जिसके कारण नागरिक होने के नाते उनके सम्मान का हनन होता है।

समानता

संविधान के अनुच्छेद 14 में यह गारंटी दी गई है कि कानून की नज़र में सभी नागरिक एक समान हैं। यही कारण है कि संविधान के अनुच्छेद 14 में, किसी जायज़ सरकारी उद्देश्य को पूरा करने के अलावा, किसी भी तरह के कानूनी वर्गीकरण को प्रतिबंधित किया गया है। इसका अर्थ यह है कि किसी एक समूह के लोगों के साथ बाकियों से अलग व्यवहार करने से पहले, सरकार को यह सिद्ध करना होगा कि वह किसी वैधानिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए ऐसा कर रही है। उसे यह भी दर्शाना होगा कि इस समूह के साथ अलग व्यवहार करने से किस तरह वह उद्देश्य पूरा हो पाएगा।

संविधान के अनुच्छेद 14 के अंतर्गत दी गई गारंटी पर विचार करते समय न्यायालय ने आरंभ में विचार रखा कि नैतिकता की प्रचलित धारणाओं के आधार पर, निजी यौन व्यवहारों के वर्गीकरण को सही नहीं ठहराया जा सकता। किसी विशेष तरह के ''नैतिक'' दृष्टिकोण को सही ठहराना वैधानिक रूप से राज्य के हित में नहीं होगा, जब तक कि इससे किसी ऐसी हानि को रोका जा सकता हो, जिसके बारे में स्पष्ट रूप से व्याख्या की जा सके।

> ''राज्य के पास यह संवैधानिक योग्यता नहीं है कि वह नागरिकों के जीवन की गोपनीयता पर अतिक्रमण करे या उस व्यवहार को नियंत्रित करे, जिसका संबंध केवल सार्वजनिक नैतिकता के आधार पर किसी नागरिक से हो। एकांत में आपसी सहमति के साथ वयस्कों द्वारा यौन संबंधों को, बिना किसी गंभीर हानि के प्रमाणों के होते हुए, आपराधिक मान लेना, न केवल लापरवाह बल्कि अनुचित भी होगा''। (परिच्छेद 92)

न्यायालय ने आगे यह भी स्पष्ट किया कि हालांकि धारा 377 तकनीकी रूप से कुछ व्यवहारों को ही आपराधिक मानती है और इसमें किसी विशेष वर्ग का कोई उल्लेख नहीं है, फिर भी, वास्तविकता यही है कि कानून की यह धारा मुख्य रूप से समलैंगिक लोगों को ही निशाना बनाती है।

इस धारा के अंतर्गत जिन यौन व्यवहारों को आपराधिक माना गया है, उनको समलैंगिक पुरुषों के साथ ही अक्सर जोड़ा जाता है। इसलिए भारतीय दण्डविधान की धारा 377 का असर यह होता है कि सभी समलैंगिक पुरुषों को अपराधी की नज़र से देखा जाता है। ''असल में आपराधिक समझे जाने वाले ये सभी यौन व्यवहार एक विशेष वर्ग, अर्थात समलैंगिक लोगों से ज़्यादा जुड़े हुए हैं''।

> ''जब समलैंगिकता से जुड़े हर व्यवहार, हर विचार को अजीब और घिनौना मान लिया जाता है, तो समलैंगिक पुरुषों और महिलाओं के पूरे समुदाय को ही गलत और विकृत मान लिया जाता है। इनके साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार की वजह इनके द्वारा किए गए कार्य नहीं, बल्कि इनके बारे में औरों के मनगढ़ंत ख़याल हैं। नतीजा यह होता है कि जनसंख्या के एक बड़े समूह के साथ, स्थापित यौनिक मान्यताओं का पालन न करने के कारण, शोषण होता है, उन्हें अलग-थलग कर दिया जाता है और वे अपने आप में ही सिमट कर रह जाते हैं''। (परिच्छेद 94)

> ''इस पूरे विचार-विमर्श का निष्कर्ष यह है कि पुरुषों के साथ सैक्स करने वाले पुरुषों और समलैंगिक समुदाय के साथ किया जाने वाला यह भेदभाव गलत और दोषपूर्ण है, और इसलिए इससे भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होता है''। (परिच्छेद 98)

भेदभाव से मुक्ति

न्यायालय ने अन्य तरीके से भी यह तर्क दिया कि धारा 377 को लागू करने से असंवैधानिक रूप से समलैंगिक व्यक्तियों के साथ भेदभाव होता है। संविधान के अनुच्छेद 15 में सैक्स या लिंग सहित किन्हीं विशेषताओं के आधार पर किसी वर्ग विशेष के साथ भेदभाव किया जाना वर्जित है। न्यायालय ने माना कि ''यौन व्यवहार या प्रवृत्तियाँ एक तरह से सैक्स या लिंग के

समान ही है और यौन प्रवृत्तियों के आधार पर भेदभाव किए जाने की अनुमति अनुच्छेद 15 के अंतर्गत नहीं दी गई है''। (परिच्छेद 104)

समान कारणों के आधार पर भेदभाव के विचार तक पहुँचने के लिए न्यायालय ने कनाडा तथा दक्षिण अफ्रीका के उच्चतम न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णयों को आधार बनाया, जिन्होंने समान आधार पर भेदभाव किए जाने को इस तरह परिभाषित किया हैः ''इन दोनों स्थितियों में समानता यह है कि इन दोनों में ऐसे पूर्वाग्रहों के बल पर भेदभाव किया जाता है जिनमें कोई तथ्य नहीं होता, बल्कि उनका आधार एक ऐसी व्यक्तिगत विशेषता होती है जिसे बदलना या तो नामुमकिन है या फिर उस व्यक्ति के लिए बेहद नुकसानदायक। (परिच्छेद 102)

समान आधार पर भेदभाव वाले तर्क का प्रयोग करके न्यायाधीशों ने उन दूसरे समूहों के लिए भी दरवाज़े खुले रखे हैं जो भेदभाव का सामना कर रहे हों और अनुच्छेद 15 के अंतर्गत सुरक्षा पाने के इच्छुक हों। जैसा कि न्यायाधीशों ने एक बार फिर से दक्षिण अफ्रीका के न्यायिक मामलों को आधार बनाकर लिखा है, यह निर्धारित करने के लिए कुछ दिशा-निर्देश बनाए जा सकते हैं कि एक जैसी परिस्थितियों के आधार पर भेदभाव के क्या आयाम हो सकते हैं। ''कुछ मामलों में इस तरह के भेदभाव बदले न जा सकने वाले शारीरिक विशेषताओं से जुड़े होते हैं, कुछ मामलों में ये मानव संबंधों से जुड़े होते हैं, कुछ में उनका संबंध बौद्धिक, वैचारिक और धार्मिक मानवीय मान्यताओं से होता है, तो कुछ मामलों में इनमें से एक से अधिक विशेषताएँ भी शामिल हो सकती हैं''। (परिच्छेद 103)

इस तरह न्यायाधीशों ने अनुच्छेद 15 में 'सैक्स' के अर्थ की व्याख्या करते हुए इसमें न केवल शारीरिक या जैविक सैक्स को, बल्कि यौन प्रवृत्तियों को भी शामिल किया है। किसी व्यक्ति को 'आदमी' या 'औरत' के लिए पहले से तय नियम आचार का पालन करने के लिए बाध्य करने को सैक्स या लिंग के आधार पर भेदभाव के समान समझा जा सकता है। न्यायालय का कहना है :

> ''सैक्स के आधार पर भेदभाव से सुरक्षा के मौलिक अधिकार का उद्देश्य है लोगों के ऐसे व्यवहार को रोकना जिसमें किसी व्यक्ति का 'सामान्य' या 'प्राकृतिक' जेंडर भूमिकाओं का पालन न करना, उसके साथ भेदभाव की वजह बन जाता हो। आदमी और औरत के बारे में बहुत ही पुरानी घिसी पिटी विचारधाराएं, यौन प्रवृत्तियों के आधार पर भेदभाव करने की वजह है''। (परिच्छेद 99)

न्यायालय इस निष्कर्ष पर भी पहुँचता है कि अनुच्छेद 15 द्वारा प्रदान अधिकार सभी पर 'हॉरीज़ॉन्टल' तरह से लागू होते हैं। मानवाधिकारी सिद्धान्तों पर काम करने वाले 'वर्टिकल' (राज्य की ओर से देय नागरिकों के अधिकार) और 'हॉरीज़ॉन्टल' (नागरिकों के परस्पर अधिकार) में अंतर करते हैं। उदाहरण के लिए, यदि सरकार कोई ऐसा नियम बनाना चाहे जिसमें मुसलमानों को किसी विशेष क्षेत्र में रहने की मनाही हो, तो यह स्पष्ट रूप से वर्टिकल भेदभाव होगा क्योंकि इस मामले में राज्य अपने नागरिकों के 'समानता के अधिकार' का हनन कर रहा होगा। इसी तरह दूसरी ओर, यदि किसी मुस्लिम व्यक्ति को उसके मुस्लिम होने के कारण किसी आवासीय बिल्डिंग में घर न खरीदने दिया जाए तो यह मामला हॉरीजॉन्टल भेदभाव का होगा क्योंकि इसमें दूसरे नागरिक उस व्यक्ति के समानता के अधिकार का उल्लंघन कर रहे होंगे।

समलैंगिक लोगों को पुलिस के अलावा सरकार से असंबंधित दूसरे लोगों जैसे कि गुंडों के अत्याचारों का भी सामना करना पड़ता है। इस वास्तविकता को देखते हुए न्यायाधीशों ने यह स्पष्ट किया है कि सैक्स के आधार पर भेदभाव न बरते जाने का यह संवैधानिक अधिकार, एक हॉरिजॉन्टल अधिकार है। ''अन्य शब्दों में, इस अधिकार के चलते कोई भी नागरिक किसी और नागरिक को सार्वजनिक स्थानों में प्रवेश से या उसके इस्तेमाल से नहीं रोक सकता''। (परिच्छेद 104) समलैंगिक लोगों पर अत्याचार की स्थिति में पुलिस की लापरवाही के खिलाफ भी यह एक मज़बूत नियम है। चूंकि भेदभाव से सुरक्षा का अधिकार

एक हॉरिज़ॉन्टल अधिकार है, इसलिए पुलिस समलैंगिक लोगों के साथ दूसरे नागरिकों द्वारा भेदभाव किए जाने पर, स्वयं कुछ न करके भी इस अधिकार का उल्लंघन कर सकती है। इस तरह की सुरक्षा यदि उपलब्ध न हो तो संभव है कि पुलिस दूसरे लोगों द्वारा एल.जी.बी.टी. लोगों के विरुद्ध किए जा रहे अत्याचारों और अपराधों के प्रति आँखें मूंद ले और एक तरह से उनके अधिकारों के हनन को दूसरों के हाथों में सौंप दे।

अदालत के इस नियम का प्रभाव उत्पीड़न और अत्याचारों के जटिल मामलों के अलावा, रोज़मर्रा होने वाले भेदभाव पर भी हो सकता हैं। संविधान के अनुच्छेद 15 में ऐसे विशेष सार्वजनिक स्थानों का उल्लेख है जहाँ सैक्स या लिंग के आधार पर भेदभाव किया जाना प्रतिबंधित है। इन स्थानों में दुकानें, रेस्तरां, होटल और मनोरंजन के सार्वजनिक स्थान आदि शामिल हैं। इस तरह यदि किसी एल.जी.बी.टी. व्यक्ति को उसकी यौन प्रवृत्तियों या यौनिक पहचान के कारण किसी दुकान से वापस भेज दिया जाए, तो यह निश्चित रूप से उसके साथ भेदभाव न किए जाने के अधिकार का उल्लंघन होगा।

स्वास्थ्य का अधिकार

न्यायाधीशों का कहना है कि संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त जीवन के अधिकार की व्याख्या करते हुए उच्चतम न्यायालय ने स्वास्थ्य के अधिकार को भी इसका हिस्सा माना है। स्वास्थ्य के इस अधिकार में कई तरह के अधिकार शामिल हैं, जैसे कि स्वास्थ्य सेवा प्रणाली तक पहुँच पाने के समान अवसरों का होना।

न्यायाधीशों ने स्पष्ट किया है कि आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों के अंतरराष्ट्रीय समझौते (आईसीईएससीआर) में यह प्रावधान है कि यौन प्रवृत्तियों या व्यक्ति की एचआईवी की स्थिति के आधार पर, उसके साथ भेदभाव किए जाने से उसके स्वास्थ्य के अधिकार का उल्लंघन होता है। इसके बाद उन्होंने विस्तार से एचआईवी/एड्स के विरुद्ध संघर्ष कर रही

अंतरराष्ट्रीय और घरेलू संस्थाओं की नीतियों का ब्यौरा दिया है, जिनमें संयुक्त राष्ट्र की कई संस्थाओं की घोषणाएँ भी शामिल हैं। उन्होंने केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री द्वारा 2008 में कही गयी बातों का उल्लेख भी किया, जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया था कि धारा 377 की वजह से यौनकर्मियों और पुरुषों के साथ सैक्स करने वाले पुरुषों के साथ कलंक की भावना को जोड़े जाने के कारण एचआईवी/एड्स की रोकथाम के प्रयासों में एक बहुत बड़ी बाधा पैदा होती है।

अतिरिक्त महाधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिए जाने पर, कि धारा 377 को रद्द कर दिए जाने से एचआईवी और तीव्रता से फैलेगा, न्यायाधीशों ने उन्हें तीखी फटकार लगाते हुए कहा कि उनके द्वारा दिया गया तर्क 'पूरी तरह निराधार है क्योंकि यह गलत और असंगत मान्यताओं पर आधारित है'। (परिच्छेद 72) न्यायाधीशों ने कहा कि इस तरह के कोई वैज्ञानिक सबूत मौजूद नहीं है जिनसे पता चलता हो कि समलैंगिकता को आपराधिक न समझने और एचआईवी के प्रसार की दर में बढ़ोतरी में कोई आपसी संबंध है। वास्तविकता तो यह है कि नैको द्वारा प्रस्तुत शपथ-पत्र से यह लगता है कि समलैंगिकता को आपराधिक न समझे जाने से एचआईवी की रोकथाम प्रयासों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। न्यायाधीश इसलिए इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दण्डविधान की धारा 377 सार्वजनिक स्वास्थ्य के मार्ग में उत्पन्न होने वाली बाधा है, जो विशेष रूप से एल.जी.बी.टी. लोगों के स्वास्थ्य के अधिकार का उल्लंघन करती है।

राज्य द्वारा सार्वजनिक स्वास्थ्य को सुरक्षित रखने का उद्देश्य, गोपनीयता के अधिकार को कुछ हद तक सीमित रखे जाने का पर्याप्त कारण माना जा सकता है। लेकिन न्यायालय का मानना है कि इस तर्क को यदि मान लिया जाए तो वास्तव में राज्य को स्वयं ही धारा 377 को खारिज करने के लिए बाध्य होना पड़ेगा क्योंकि धारा 377 निश्चित रूप से एचआईवी/एड्स की रोकथाम प्रयासों में विघ्न उत्पन्न करती है।

संवैधानिक नैतिकता

सरकार और श्री बी.पी. सिंघल, दोनों का एक खास तर्क यह था कि कानून को नैतिकता से अलग करके लागू नहीं किया जा सकता बल्कि कानून का तो काम है समाज में व्यापक नैतिकता को दर्शाना। उनका कहना था कि 'सार्वजनिक नैतिकता' को सुरक्षित रखने के लिए, राज्य द्वारा, लोगों के मौलिक अधिकारों को सीमित करना जायज़ है। यह एक मूल प्रश्न था जिसका उत्तर न्यायाधीशों को देना था।

न्यायालय ने यह तर्क दिया कि सरकार लोगों के मौलिक संवैधानिक अधिकारों का हनन केवल उन परिस्थितियों में कर सकती है जब, ऐसा करने के लिए उसके पास राज्य के हित से जुड़ा अत्यावश्यक कारण हों। उदाहरण के लिए, हिंसक विरोध होने की स्थिति में राज्य लोगों के मुक्त रूप से यहाँ-वहाँ जाने पर रोक लगा सकता है क्योंकि इसमें कानून-व्यवस्था बनाए रखने तथा लोगों को सुरक्षा प्रदान करने का पर्याप्त कारण होता है। या फिर न्यायालय ने कहा, सरकार एकांत में भी वयस्कों और अल्प वयस्कों के बीच सैक्स को आपराधिक ठहरा सकती है क्योंकि ऐसा करने का कारण है बच्चों को यौन उत्पीड़न से सुरक्षित रखने की राज्य की ज़िम्मेदारी।

न्यायाधीशों ने यह स्पष्ट कर दिया कि प्रचलित सार्वजनिक नैतिकता को सुरक्षित रखना ऐसा पर्याप्त कारण नहीं है जिससे कि, सरकार एल.जी.बी.टी. लोगों के आदर, गोपनीयता और समानता के अधिकारों को सीमित करने को सही ठहरा सके। इसलिए जनसाधारण की नैतिक राय और विचारों को एलजीबीटी लोगों के मौलिक अधिकारों को सीमित करने का पर्याप्त कारण नहीं माना जा सकता। न्यायालय के अनुसार :

> ''अनुच्छेद 21 के अंतर्गत, नैतिकता या किसी विशेष तरह के व्यवहारों के प्रति एक आम विरोध संवैधानिक अधिकारों को सीमित करने के लिए पर्याप्त और ठोस कारण नहीं है। नैतिकता के बारे में प्रचलित मान्यताओं और संवैधानिक नैतिकता में अंतर होता है। प्रचलित

> मान्यताओं में हमेशा सही या गलत की निजी धारणाओं में परिवर्तन आता रहता है, जबकि संवैधानिक नैतिकता का आधार संवैधानिक मूल्य हैं। यदि कोई नैतिकता राज्य हित के अति आवश्यक कारणों की कसौटी पर खरी उतर सकती है, तो वह 'संवैधानिक नैतिकता' ही होगी, न की 'प्रचलित नैतिकता'। (परिच्छेद 79)

> ''नैतिक स्तर पर नाराज़गी, कितनी भी तीव्र क्यों न हो, किसी व्यक्ति के आदर और गोपनीयता के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करने की जायज़ वजह नहीं हो सकती। हमारे यहाँ की परिस्थितियों में संवैधानिक नैतिकता, सार्वजनिक नैतिकता के तर्क से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है, भले ही बहुसंख्या में लोग सार्वजनिक नैतिकता के पक्ष में विचार रखते हों''। (परिच्छेद 86)

न्यायालय ने जिस 'संवैधानिक नैतिकता' की व्याख्या की है, वह उन उदार लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित है जो भारतीय संविधान के आधार स्तंभ हैं, न कि किसी विशेष धार्मिक या सांस्कृतिक परंपरा या प्रथा पर। न्यायाधीशों ने यह विचार डा. अम्बेडकर के सिद्धांतों से लिया है, जिन्होंने संवैधानिक सभा में कहा था, ''संवैधानिक नैतिकता केवल एक प्राकृतिक विचार नहीं है बल्कि इसे तैयार करना होता है। हमें यह समझना होगा कि हमारे लोगों को अभी तक इसकी जानकारी नहीं है। भारत में लोकतंत्र केवल ऊपरी सतह पर मौजूद है और वास्तव में भारत की व्यवस्था मोटे तौर पर अलोकतांत्रिक है''। (परिच्छेद 79)

नैतिकता पर आधारित इस पूरी बहस को यह परिकल्पना एक बिल्कुल ही अलग स्तर पर ले जाती है; न्यायाधीशों ने केवल इतना कहा है कि संविधान से लिए गए नैतिक मूल्य ही उन मौलिक अधिकारों को सीमित करने के लिए प्रयोग में लाए जा सकते हैं, जो स्वयं संविधान द्वारा दिए गए अधिकार हैं। इस संबंध में धार्मिक नैतिक मान्यता पूरी तरह से अप्रासंगिक हैं। 'निजी' नैतिकता तथा दण्डविधान के कानूनों के बीच सरल अंतर करने के बजाए न्यायाधीशों ने धार्मिक और नागरिक नैतिकता के

बीच अंतर करने वाली एक बड़ी ही सूक्ष्म रेखा खींची है। इस बात को मानते हुए कि कानून निश्चित तौर से नैतिकता पर आधारित होता है, उन्होंने इस नैतिकता की पहचान संवैधानिक नैतिकता से जोड़ी है।

आगे चलकर वे कहते हैं, ''भारत का संविधान विभिन्नता को मानता है, सुरक्षित रखता है और सराहता है। समलैंगिक लोगों को केवल उनकी यौन प्रवृत्तियों के आधार पर कलंकित करना या उन्हें अपराधी समझना संवैधानिक नैतिकता के विरुद्ध होगा''। (परिच्छेद 80)

बहुसंख्यवाद की विरोधी संस्था के रूप में न्यायालय की भूमिका

अतिरिक्त महाधिवक्ता द्वारा दिए गए और एक बड़े तर्क का सामना न्यायाधीशों को करना पड़ा कि कानूनों की पुनः समीक्षा करते समय न्यायाधीशों को वैधानिक आत्म-संयम बरतना चाहिए। अतिरिक्त महाधिवक्ता का विचार यह था कि न्यायालयों को वैधानिक सभा की राय को महत्वपूर्ण स्थान देना चाहिए क्योंकि वह जनता की इच्छाओं का प्रतिनिधित्व करती है और वही यह निर्णय लेने में सक्षम है कि समुदाय के लिए क्या बेहतर होगा। न्यायाधीशों ने यह स्वीकार किया कि आमतौर पर न्यायालय वैधानिक सभाओं के विवेक को ज़रूर मानता है, लेकिन उसे कितना महत्व दिया जाए यह इस बात पर निर्भर करता है कि न्यायालय के सामने किस तरह के मामले पर विचार किया जा रहा है।

> ''जब 'बहुत अधिक संवैधानिक महत्व' के मामले, जैसे कि संविधान में निहित मानवाधिकारों के मामलों पर विचार हो रहा हो, तो न्यायालयों का यह कर्तव्य है कि वे अपने अधिकार क्षेत्र का पालन करते हुए, इस तरह के मामलों को कार्यपालिका के पास भेज देने को कम महत्व दें। जबकि वे दूसरे किन्हीं मामलों को कार्यपालिका को सौंप देना उचित समझें''। (परिच्छेद 118)

न्यायालयों की भूमिका पर अपनी समझ के बारे में और विस्तार से बताते हुए वे कहते हैं,

> ''न्यायालय का दायित्व है कि वह मौलिक अधिकारों को सुरक्षा प्रदान करे। आधुनिक लोकतंत्र बहुसंख्यकों के शासन के सिद्धान्त पर आधारित है और इसमें साथ ही यह माना जाता है कि जिन लोगों के विचार बहुसंख्यक विचारों से अलग हों, उनके मौलिक अधिकारों को सुरक्षित रखने की भी आवश्यकता है। इसलिए यह न्यायपालिका का दायित्व है कि वह सिद्धान्तों में संतुलन को बनाए रखे और यह सुनिश्चित करे कि केवल संख्या के आधार पर सरकार मौलिक अधिकारों का हनन न करे। मौलिक संरचना तैयार होने के बाद उसकी पूरी वैधानिक समीक्षा करना भी संवैधानिक कार्ययोजना का ही अभिन्न अंग है''। (परिच्छेद 125)

> ''इस संदर्भ में, न्यायपालिका की भूमिका है बहुसंख्या के प्रतिकूल विचार रखने वालों के हितों की सुरक्षा से जुड़े संवैधानिक प्रावधानों की रक्षा करना''। (परिच्छेद 120)

न्यायाधीशों ने *वेस्ट वर्जिनिया स्टेट बोर्ड ऑफ एजूकेशन* बनाम *बार्नेट* मुकदमे के निर्णय में शामिल जाने-माने शब्दों का उल्लेख किया है।

> ''अधिकारों की कानूनी सूची प्रस्तुत करने का एकमात्र उद्देश्य था कुछ विशेष मामलों को राजनैतिक विवाद की उठा-पठक से सुरक्षित रखना ताकि ये विषय अधिकारियों और बहुसंख्यकों की पहुंच से दूर हो जाएँ और न्यायालय इन्हें कानूनी सिद्धान्तों के रूप में स्थापित करके इनको प्रयोग में लाए। किसी व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता, सम्पत्ति, विचारों की स्वतंत्रता, स्वतंत्र प्रेस, प्रार्थना करने और एकत्रित होने की स्वतंत्रता और दूसरे मौलिक अधिकारों के विषय पर मत प्राप्त नहीं किए जाते; ये अधिकार किसी भी तरह के चुनाव के परिणामों पर निर्भर नहीं होते''। (परिच्छेद 120)

यूँ न्यायाधीशों ने कार्यपालिका में बहुमत को अनदेखा करते हुए मौलिक अधिकारों को सुरक्षित रखने के न्यायपालिका के उत्तरदायित्व को दोहराया। इस तरह एक संस्था के रूप में, न्यायपालिका का यह उत्तरदायित्व है कि ''कार्यपालिका में बहुमत या बहुसंख्यक विचार यदि अल्पसंख्यकों के विरुद्ध हो जाएँ, तो भी कानूनी अधिकारों के मुख्य और भव्य आदेश को नकारा न जा सके''। (परिच्छेद 125)

निष्कर्ष

अपने निर्णय में न्यायालय ने भारतीय संविधान में बसे समानता के सिद्धान्त को आधार बनाया है। निर्णय ने देश की स्वतंत्रता के समय पर संविधान निर्माताओं के विचारों और आज के समय में एलजीबीटी लोगों को भेदभाव से सुरक्षित रखने के बीच सक्रिय संबंध स्थापित किया है। न्यायालय द्वारा निर्णय में दिए गए कुछ विचार इस प्रकार हैं :

> ''भारतीय संविधान में बसा समानता का विचार पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा 13 दिसम्बर 1946 को प्रस्तुत 'वस्तुपरक संकल्प' पर आधारित है। यह संकल्प प्रस्तुत करते हुए अपने भाषण में, नेहरू ने यह इच्छा ज़ाहिर की कि सदन को केवल इस संकल्प के सीमित कानूनी शब्दों पर गौर नहीं करना चाहिए, बल्कि इसके पीछे की भावना पर विचार करना चाहिए। उन्होंने कहा, 'शब्द बहुत बार जादुई करामात दिखाते हैं, लेकिन कभी-कभी शब्दों का जादू भी मानवीय आत्मा और एक देश की भावनाओं के आवेश के जादू की बराबरी नहीं कर सकता। इस संकल्प में बड़े ही सौम्य तरीके से दुनिया को यह बताने की कोशिश की गई है कि अभी तक, इतने लंबे समय तक हमारे सपने क्या रहे हैं और हम नज़दीकी भविष्य में क्या प्राप्त कर लेने की आशा रखते हैं'।'' (परिच्छेद 129)

नेहरू की वस्तुपरक घोषणा से उद्धरण देने के बाद न्यायालय का कहना है :

> ''अगर भारत के संविधान का कोई एक बुनियादी उसूल है तो वह है समावेश की भावना। इस न्यायालय का मानना है कि संविधान में बसा यह मूल्य हमारे समाज का एक ऐसा अभिन्न हिस्सा है जिसे हमने पीढ़ी दर पीढ़ी सींचा है। आज भी हर क्षेत्र में, हर व्यक्ति की भूमिका की पहचान के पीछे, भारतीय समाज की वही सबको साथ लेकर चलने वाली प्राचीन परंपरा दिखाई पड़ती है। बहुसंख्यकों द्वारा जिन लोगों को 'अलग' या 'विकृत' समझा जाता है, उन्हें भी इस बूते पर पीछे छोड़ा या बहिष्कृत नहीं किया जाता''। (परिच्छेद 130)

> ''जिस समाज में सबको साथ लेकर चलने का भाव और आपसी समझबूझ मौजूद हों, वहाँ इस तरह के भिन्न व्यवहारों वाले लोगों को भी आदरपूर्ण जीवन जी पाने और भेदभाव न होने के प्रति आश्वस्त किया जा सकता है। नेहरू ने 'संकल्प के पीछे आत्मा या विचार' की जो बात कही थी, वह यही हैं। हमारे विचार से भारतीय संवैधानिक कानून इस बात की इजाज़त नहीं देता कि एल.जी.बी.टी. लोगों के बारे में आमतौर पर फैली गलतफहमियाँ हमारे आपराधिक कानून पर ज़बरन थोपी जाएँ। हम यह भुला नहीं सकते कि भेदभाव समानता का विरोधी है और केवल समानता भाव का आदर करने से ही हर व्यक्ति का आदर हो सकेगा''। (परिच्छेद 131)

निर्णय किन क्षेत्रों में लागू होगा

कोर्ट का यह निर्णय किन क्षेत्रों में लागू होगा, इसपर कुछ विवाद है। यह निर्णय संसद के एक अधिनियम में, संविधान के उल्लंघन के कारण बदलाव लाता है। इसके कारण एक मज़बूत सोच है कि यह निर्णय पूरे देश में लागू होना चाहिए। कानूनी स्पष्टिकरण कहता है, अगर एक उच्च न्यायालय किसी कानून को असंवैधानिक करार देता है, तो जबतक कोई दूसरा उच्च न्यायालय विपरीत निर्णय ना दे, यह निर्णय पूरे देश में असंवैधानिक ही माना जाएगा। ऐसा इसलिए कि सचमुच यह बड़ी अजीब बात होगी कि दिल्ली में रह रहे लोगों के संवैधानिक अधिकार बाकी भारतीय नागरिकों से ज़्यादा मज़बूत हों। संवैधानिक अधिकार स्वभाव से ही राज्य सीमांओं से बंधे नहीं होते।

हालाँकि, एक विपरीत राय यह भी है कि तकनीकी रूप से, दिल्ली उच्च न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र के अंदर ही आदेश दे सकता है। इसलिए जबतक सर्वोच्च न्यायालय इस केस पर निर्णय नहीं सुनाता, कोई और उच्च न्यायालय, दिल्ली उच्च न्यायालय से असहमत होने के लिए स्वतंत्र है। अगर कोई और न्यायालय असहमती प्रकट करता है, तब धारा 377 की क्षेत्रीय मान्यता काफी अस्पष्ट हो जाएगी। लेकिन अभी के लिए दिल्ली उच्च न्यायालय का फैसला पूरे देश के लिए है, और पूरे भारत में लागू है।

टिप्पणियाँ

आज़ादी की राह पर

गौतम भान

पिछले हफ़्ते, दिल्ली के उच्च न्यायालय ने धारा 377 पर अपना ऐतिहासिक फ़ैसला सुनाते वक़्त बड़ी ही सूझ-बूझ से शब्द चुने। 1946 के संवैधानिक विवादों का ज़िक्र करते हुए, हमें उस हिन्दुस्तान की याद दिलायी, जिसकी आज़ादी के समय कल्पना की जा रही थी। तब नेहरू की गुज़ारिश थी कि हम संविधान की पेचीदी कानूनी भाषा में उलझने के बजाय उसकी भावना को अपनायें। बृहस्पतिवार को उसी भावना की पहचान देते हुए न्यायाधीश शाह और न्यायाधीश मुरलीधर ने कहा, ''अगर भारत के संवधिान का कोई एक बुनियादी उसूल है, तो वह है समावेश की भावना। इस न्यायालय का मानना है कि संविधान में बसा यह मूल्य हमारे समाज का एक ऐसा अभिन्न हिस्सा है जिसे हमने पीढ़ी दर पीढ़ी सींचा है।'' फ़ैसले में कुछ ही आगे जाकर वे कहते हैं: ''भारतीय संवैधानिक कानून इस बात की इजाज़त नहीं देता कि एल.जी.बी.टी. लोगों के बारे में आम तौर पर फैली ग़लतफ़हमियाँ हमारे आपराधिक कानून पर ज़बरन थोपी जाएँ। हम यह भुला नहीं सकते कि भेदभाव समानता का विरोधी है, और केवल समानता भाव का आदर करने से ही हर व्यक्ति को सम्मान मिल सकेगा।''

दिल्ली उच्च न्यायालय का कमरा नं. 1, विषय-सूची का विषय नं. 1, 2 जुलाई की सुबह, 10.30 का समय। चंद कार्यकर्त्ताओं के हाथों में प्रवेश-पास, सभी धारा 377 के खिलाफ़ दशक-भर के संग्राम के कुछ पल याद करते हुए। और बस इन सहज शब्दों के ज़रिये और उस इलेक्ट्रॉनिक पास के सहारे, दशकों से चल रहे आंदोलन और आठ सालों से चल रही कानूनी लड़ाई का समापन। और इतना काफ़ी था। जब फ़ैसला पढ़ा जा रहा था, कमरे में भावनाओं का आलम महसूस करने लायक था। हमारे आँसू बह रहे थे, न सिर्फ़ इसलिए कि यह हमारी

जीत थी, पर इसलिए भी कि इस फ़ैसले ने हमें आज़ादी बख्श दी थी। यह फ़ैसला सम्मान के बारे में है। यह फ़ैसला उस हिन्दुस्तान के बारे में है जिसकी कल्पना नेहरू ने की थी – एक ऐसा हिन्दुस्तान जो आख़िर अपनी बाहें फैलाकर उन सभी को अपनाये जो यहाँ रहते हों। यह फ़ैसला बराबरी, सम्मान, अधिकार जैसे शब्दों के बारे में है जो लाखों क्वीयर नागरिकों की ज़िंदगियों में गहरायी से उतरकर, उन्हें एहसास दिलाते हों कि अब अपने ही देश की ज़मीन पर, वो भी इत्मिनान से अपने कदम बढ़ा सकेंगे।

यह फ़ैसला हमें वापस अम्बेडकर तक ले जाता है, जिनका ज़िक्र करते हुए न्यायाधीशों ने हमें याद दिलाया कि किस लगन से वह उस संविधान के लिए लड़े थे जिसकी उन्होंने कल्पना की थी। उनका आग्रह था कि हमारे देश की कानून व्यवस्था एक संवैधानिक नैतिकता पर आधारित होनी चाहिए, न कि समाज में प्रचलित नैतिकता पर। सार्वजनिक नैतिकता यह तय नहीं कर सकती कि राज्य के हित में क्या है, बल्कि संविधान में निर्धारित उसूल ही इसका फ़ैसला कर सकते हैं। आने वाले दिनों में, ज़ाहिर है, मीडिया में भी और आम तौर पर लोगों के बीच नैतिकता पर खूब बहस होगी, और इस दौरान हमें अपनी-अपनी व्यक्तिगत नैतिकता के अलावा उस नैतिकता को हर दम सामने रखना होगा, जो नागरिक होने के नाते हम सब की नैतिकता है।

यह फ़ैसला समानता के बारे में है। संविधान के अनुच्छेद 15 का उल्लेख करते हुए न्यायाधीशों ने तय किया कि भेदभाव के ख़िलाफ़ अधिनियमों में 'सैक्स' शब्द के मायने में 'यौनिक प्रवृत्ति' भी शामिल होनी चाहिए। जेन्डर या सैक्स के आधार पर भेद-भाव के ख़िलाफ़ सभी नियम-कानून अब यौनिक प्रवृत्ति के आधार पर भेदभाव के भी ख़िलाफ़ माने जायेंगे। अनुच्छेद 15 को अपने फ़ैसले का अहम हिस्सा बनाकर न्यायाधीशों ने हमें इस बात से अवगत करवाया है कि क्वीयर लोगों को आपराधिक न मानने का मतलब है उनके साथ हर मौके पर सम्मान और समानता के साथ व्यवहार करना – चाहे वो काम की जगह हो या अस्पताल, अपना घर हो या कोई सार्वजनिक स्थल।

बहरहाल, इस फ़ैसले को हम सिर्फ़ क्वीयर होने के नाते न देखकर, इसे अपने यौनिक प्रवृत्ति या जेन्डर या मज़हब या जाति या भाषा या प्रदेश से जुड़ी पहचान से हटकर, महज़ भारतीय होने के नाते समझें, तो किस तरह समझें? देशभर में अधिकारों के लिए तरह-तरह के आंदोलन और संघर्ष चलते आये हैं और अभी भी जारी हैं। लोग सरकार और पूरी व्यवस्था के प्रति निराश और कुंठित हैं। कईयों का कहना है कि भारत में, ख़ास करके इस नये भारत में, बदलाव लाना नामुमकिन है, जिसकी चमक-दमक ने उसे उस भारत से अलग कर दिया है जिसमें ज़्यादातर लोग बसते हैं। लेकिन इस लेखक सहित हम सबके राज्य-व्यवस्था में लुप्त हो रहे विश्वास को इस फ़ैसले ने एक नया बल दिया है। यह इस बात का संकेत है कि हमारा संविधान अभी ज़िंदा है, और आंदोलन या संघर्ष की कभी-कभी जीत भी होती है। यह हर भारतीय नागरिक के लिए खुशी की बात है - क्योंकि आज सिर्फ़ क्वीयर अधिकारों की ही नहीं बल्कि हम सभी के अधिकारों की रक्षा हुई है।

आगे सावधानी से काम लेना ज़रूरी होगा। क्वीयर आंदोलन का हमेशा ही मानना रहा है कि सम्मान पाने की लड़ाई सिर्फ़ अदालत में जीत लेना काफी नहीं होगा। हमारा संघर्ष उन सभी स्थानों में जारी रहेगा जहाँ नफ़रत और भेदभाव का सीधा असर क्वीयर लोगों के जीवन पर पड़ता हो - परिवारों में, डॉक्टरों के क्लीनिक में, पुलिस थाने में, कार्यालयों में और सड़कों पर। कानूनी बदलाव के चलते यह सब रातों रात नहीं बदलेगा। हमारी लड़ाई अभी ख़त्म नहीं हुई है, लेकिन इस फ़ैसले ने हमारे बँधे हाथ खोल ज़रूर दिये हैं। लोकमत बदलने के लिए तर्क-वितर्क का हमारा यह खेल अब ऐसे समतल मैदान पर खेला जायेगा, जहाँ नागरिक होने के नाते हम सब बराबरी से एक दूसरे का सामना कर सकेंगे। फ़ैसले के शब्द तो हमारे साथ हैं ही, अब अदालत के बाहर की दुनिया में भी इनमें जान फूँकने का मौका मिल गया है।

सबसे बड़ा परिवर्तन तो क्वीयर लोगों के दिलों दिमाग़ों में होगा। ख़ुद को अपना पाना, अपने-आप पर शर्मिन्दगी महसूस न करना, अधिकार पाने के अपने अधिकार में विश्वास रखना, अक्सर यह

एक लंबा और अकेलेपन से घिरा सफ़र होता है। अपने आप को बराबर का नागरिक मान पाने में और भी ज़्यादा वक़्त लगता है। जब कोई क्वीयर औरत आईने में देखती है तो उसे दिखने वाले प्रतिबिंब तक को यह फैसला बदल देगा। इस सच्चाई के मायने और मूल्य, दोनों का ही शब्दों में बयान मुश्किल है।

उचित होगा कि धारा 377 के बारे में अपनी राय देने वाले भारत सरकार के मंत्री, अपनी 'सर्वसम्मति' तक पहुँचने से पहले इस फ़ैसले को अच्छी तरह पढ़ लें। अपने आप से पूछ लें कि वे फ़ैसले के किन सिद्धांतों पर फिर ग़ौर करना चाहते हैं। साथ ही याद रखें कि नेहरू और अम्बेडकर ने सदन में कुशल राजनीतिज्ञ कहलाने वाले आदमी और औरतों की कल्पना की थी। अब समय आ गया है कि वे हम सबको साथ लेकर उस काल्पनिक सदन में लौटें।

समावेश की भावना, उदारता, संवैधानिक नैतिकता, समानता। उस भूतपूर्व कल्पना वाले भारत में ये शब्द सिर्फ़ क्वीयर लोगों के संदर्भ में या समलैंगिकता का उल्लेख करने के लिए इस्तेमाल नहीं हुए थे। ये शब्द एक बार फिर पूरी तरह से भारतीय बनने जा रहे हैं। न्यायाधीशों ने हमें याद दिलाया है कि ये उसी भारतीय संस्कृति में बसे मूल्य हैं जिनकी ''रक्षा'' करने के लिए इतने लोग उतारु हैं। हम ''गे'' हों या ''स्ट्रेट'', यौनिकता को लेकर, समलैंगिकता को लेकर हमारे जो भी विचार हों, हम सबको पहचानना होगा कि इस फ़ैसले में एक धर्मनिर्पेक्ष, लोकतांत्रिक, संवैधानिक, स्वतंत्र भारत की विजय हुई है। हम सबको इस पर गर्व करना चाहिए। आज सभी क्वीयर इन्सान गर्व और ख़ुशी के साथ अपने आपको आम नागरिक मान सकते हैं – आज़ाद, सबके समान, एक नये माहौल में चैन की साँस लेते हुए।

आज क्वीयर लोग सबके हमवतन बन गये हैं। आज आख़िरकार वे महसूस कर पा रहे हैं कि उनके भी पैरों तले ज़मीन है।

लेखक शहरी योजना-नीति के क्षेत्र में काम करते हैं।

इंडियन एक्सप्रेस, जुलाई 3, 2009
http://www.indianexpress.com/news/on-freedoms-avenue/484509/

यह फैसला हम सब के लिए है

प्रताप भानू मेहता

कभी कभी एक देश के इतिहास में ऐसे पल आ खड़े होते हैं, जहां उसे अपने गहरी से गहरी आशंकाओं तथा पूर्वधारणाओं का सामना करना पड़ता है। दिल्ली उच्च न्यायालय का *नाज़ फाउण्डेशन बनाम भारत राज्य संघ* मामले में दिया गया फैसला बिलकुल वही करता है – इसमें दो सहमत वयस्कों के बीच समलैंगिक यौन संबंध बनाया जाना गैर–आपराधिक घोषित कर दिया गया है। यह फैसला न्यायिक कारीगरी का एक बेहतरीन नमूना है। यह हाल के कुछ ऐसे फैसलों में से एक है, जो संवैधानिक रूप से अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं व अपने वक्तव्य में स्पष्ट तथा सटीक हैं। यह फैसला तकनीकी रूप से सुदृढ़ है तथा कानून के गूढ़ मूल्यों पर खरा उतरता है।

इस फैसले का विस्तृत कानूनी विश्लेषण करने का भी समय आएगा, जब निश्चित रूप से, कई लोग इस फैसले को हमारी परंपराओं और मान्यताओं के विरुद्ध पाएंगे। लेकिन फैसले को सिर्फ परंपराओं के विरुद्ध देखना गलत होगा। न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह कहा है कि हमारे संवैधानिक ढांचे के अंतर्गत, किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध उसके व्यक्तित्व, जिसमें यौनिकता शामिल है, के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता। यदि हम इस मूल्य को त्याग देंगे, तो हम उन सभी मूल्यों को त्यागने की भूल कर बैठेंगे, जिन्हें हम अपने लिए संजोते हैं– हमारी स्वतंत्रता तथा बराबरी का अधिकार। यह फैसला हमारे इन्हीं महत्वपूर्ण मूल्यों की रक्षा करता है। दूसरे शब्दों में कहा जाए, तो यह फैसला कहता है कि राज्य को कोई अधिकार नहीं है कि वह दो सहमत वयस्कों के बीच निजी संबंधों को नियंत्रित करे। इससे हमारी निजी ज़िंदगी की एकांतता सुरक्षित रहेगी। यही हमारी मूल मान्यता है। इस फैसले में कहा गया है कि कोई भी व्यक्ति इतना कलंकित महसूस न करे कि वह स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ न उठा पाए। यही हमारे मूल्य हैं।

यह फैसला सबसे पहले स्वतंत्रता, बराबरी, निजी जीवन की गोपनीयता बनाए रखने तथा राज्य सरकारों की असीम शक्तियों को नियंत्रित रखने का काम करता है। इन मूल्यों का स्वरूप ही ऐसा है कि जब तक वे सब मनुष्यों के लिए बराबरी से लागू न हों, वे सुरक्षित नहीं रह सकते। जब तक राज्य को कुछ समुदायों पर मनमाना नियंत्रण करने की छूट है, तब तक निजी जीवन की गोपनीयता सुरक्षित नहीं रह सकती। यदि हम एक नागरिक से दूसरे नागरिक के बीच फर्क करेंगे तो हम कभी भी बराबरी हासिल नहीं कर सकते। अगर केवल समानांतर लोगों के बीच ही स्वाधीनता लागू की जा सकती है तो स्वतंत्रता का अधिकार यथार्थ नहीं है। सहनशीलता का मतलब है कि हम में से हर व्यक्ति कलंक, शोषण, अत्याचार से सुरक्षित जी सके – तभी हम सब वास्तव में सुरक्षित रह सकेंगे; नहीं तो हमें केवल झूठी सहनशीलता ही प्राप्त होगी। यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि यह फैसला अल्पसंख्यक समुदायों के लिए नहीं, किसी प्रकार की जीवनशैली को बढ़ावा देने के लिए नहीं, बल्कि यह फैसला उन सब मूल्यों के लिए है जो हमें एक देश के रूप में परिभाषित करते हैं। इस फैसले की निंदा करने वालों, और इसकी पैरवी करने वालों को भी, यह भूल जाना चाहिए कि इस फैसले की वकालत आम नैतिकता की नज़र से की जाए।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि यौनिकता जैसे नाजुक मामले में सामाजिक बदलाव लाना एक मुश्किल काम है। यह फैसला बड़ी कुशलता तथा सरलता से एक सच्चाई पेश करता है – राज्य आज तक यह साबित नहीं कर पाया है कि इस प्रकार के निजी संबंधों के कारण कोई गंभीर समस्या उत्पन्न हो सकती है। ऐसी समस्याओं के दावे अक्सर लापरवाह व निराधार रहे हैं, जो कुछ समुदायों के प्रति पक्षपात करते हैं और काफी अविश्वसनीय हैं, खासकर कई ऐसी समस्याओं के मुकाबले, जिन्हें हम आज झेल रहे हैं। इस मुद्दे पर हमें कम से कम उन 126 देशों की भी सहमति प्राप्त है जो भारत से पहले इसे गैर–आपराधिक घोषित कर चुके हैं। जो लोग इस फैसले से सहमत नहीं हैं, उनके लिए न्यायालय के इस फैसले को स्वीकार

करने के लिए यह एक कारण काफी होना चाहिए। कम से कम इस मुद्दे पर तो व्यापक सहमति होनी ही चाहिए।

इस फैसले के कारण सहनशीलता के मुद्दे पर चर्चाएं फिर से खुल गईं। हमेशा की तरह अपनी परंपराओं की दुहाई देते धार्मिक प्रवचक तो मौजूद हैं हीं। लेकिन एक बात स्पष्ट होनी चाहिए – कोई दावा केवल इसीलिए मान्य नहीं हो सकता क्योंकि उसका आधार धर्म है, या जैसे कि विश्व हिंदु परिषद का मानना है, कि वह परंपरा पर आधारित है। न्यायालय ने इन शब्दों का उपयोग किए बिना ही यह स्पष्ट कर दिया है। इस फैसले के बाद सभी बराबरी व स्वतंत्रता के मामलों पर यह सांसारिक तर्क लगाना और भी रुचिकर होगा। न्यायालय ने व्यक्तिगत स्वाधीनता को एक संवैधानिक मूल्य के रूप में प्राथमिकता दी है, और इस फैसले में इस मूल्य को नकारने वाली कई सामुदायिक परंपराओं पर सवाल उठाने की संभावना है।

इस फैसले से संबंधित व्याकुलता का दूसरा पहलू काफी महत्वपूर्ण है और शायद इस फैसले को सामाजिक मान्यता दिलवाने में इसका इस्तेमाल किया जा सकता है। यह पहलू असहनशीलता नहीं है, बल्कि इस मुद्दे पर एक स्पष्ट दृष्टिकोण बनाने से बचना है। यह लोग चुपचाप इस मुद्दे को नकारते आए हैं, ''न पूछो, न बताओ''। ज़रूरी नहीं कि यह उनका मानदंडक दृष्टिकोण है। और शायद आधुनिक समाज में यह कोई विकल्प भी नहीं है। यह लोग गैर–अपराधीकरण से इतने परेशान नहीं है जितना कि इस बात से कि अब उन्हें इस चर्चा में भाग लेने पर मजबूर होना पड़ रहा है। वे किसी को शोषित या कलंकित नहीं करना चाहते; वे चाहते हैं कि यौन संबंधों के मामलों में पुराने ज़मानों की तरह एक प्रकार की शर्म बर्ती जाए। और यह ऐसी उत्कंठा है जिससे बचना मुश्किल है। हमारे समाज को इसका सामना करने के कुशल रास्ते ढूंढ़ने होंगे। लेकिन इस उत्कंठा को असहनशीलता मान लेना गलत होगा। हो सकता है कि इस प्रकार की चर्चाओं से ऐसी सहनशीलता सामने आए जो कहे कि ''जो जैसा है उसे वैसा ही रहने दो''।

लेकिन अब, जब न्यायालय ने अपना फैसला दे दिया है, तब शायद यह संकोची गुट इस चर्चा में खिंचना नहीं चाहता। जो राजनीतिज्ञ इस फैसले के विरुद्ध लड़ने के लिए उतावले हो रहे हैं उन्हें समझना चाहिए कि यह उत्कंठा गैर-अपराधीकरण के खिलाफ़ नहीं है। और अगर आप को एक ''पारंपरिक'' तर्क चाहिए तो यह कहा जा सकता है। भारत में संवेदनशीलता का कारण था एक प्रकार की उपेक्षा भरी चुप्पी - जिसे जो करना है करे। वो तो औपनिवेशक कानूनों के कारण, जब राज्य सरकार की भूमिका बढ़ाई गई, संवेदनशीलता का भाव कम हो गया। न्यायालय ने बराबरी व सम्मिलित समाज की परिकल्पना की ओर कदम उठाया है, और शायद आज के दिन यह कहना सही नहीं है कि हम सभी इसके लिए तैयार हैं। लेकिन कम से कम सहमतिपूर्ण वयस्क संबंधों से राज्य को अलग करके, न्यायालय ने इस संकुचित, परंतु महत्वपूर्ण सहनशीलता के लिए रास्ता तो खोल दिया है।

इस फैसले में उपयुक्त तर्कों के अन्य तकनीकी उलझाव भी हैं। जिस प्रकार न्यायालय ने भेदभाव न करने पर ज़ोर दिया है, हो सकता है कुछ लोग निजी संबंधों को नियंत्रित करने में राज्य स्तरीय नियंत्रण की और अधिक भूमिका देखें। कुछ लोग यह तर्क भी दे सकते हैं कि न्यायालय ने जिस ''सख़्त जांच'' की बात की है, उससे निजी मामलों में राज्य का हस्तक्षेप नहीं हो सकेगा। लेकिन यह सब मुद्दे व्यक्तिगत मामलों में सर्वोच्च न्यायलय द्वारा स्पष्ट किए जाएंगे। अभी के लिए तो हमें इसी से संतुष्ट होना चाहिए कि न्यायालय ने स्पष्ट कानूनी व नैतिक दृष्टिकोण अपनाया है। इस मामले में परंपराओं के ठेकेदारों की ओर से विपक्ष का सामना करना पड़ेगा। लेकिन हम कम से कम यह तो कह सकते हैं - फैसले को स्वीकार करो और आगे बढ़ो।

लेखक दिल्ली स्थित नीति अध्ययन केन्द्र के अध्यक्ष हैं।

इंडियन ऐक्सप्रैस, 3 जुलाई 2009
http://www.indianexpress.com/news/its-about-all-of-us/484966/4

धारा 377, यौनिकता और नेहरू – संतानोत्पत्ति से परे

अपूर्वानंद

धारा 377 अब स्वेच्छा से यौन संबंध बनाने वाले समलैंगिकों पर लागू नहीं होगी। दिल्ली उच्च न्यायालय के इस निर्णय ने भारतीय समाज की नैतिकता की परिभाषाओं की चूल हिला दी है। फैसला आने के बाद हिन्दू, मुस्लिम और अन्य धार्मिक समूहों के कई नेताओं ने इसे खतरनाक बताया है और इसके खिलाफ उच्चतम न्यायालय तक जाने की धमकी दी है। कुछ तो जा भी चुके हैं। सरकार को भी कहा जा रहा है कि वह इस फैसले को चुनौती दे। अब तक के सरकार के रूख से ऐसा कुछ नहीं लग रहा कि वह इस दबाव के आगे झुकेगी।

फैसला ऐतिहासिक है। इसका सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यह एक विशेष संविधान को स्वीकार करके अपने-आपको एक राष्ट्र-राज्य के रूप में गठित करने वाले जन-समुदाय के रहने-सहने और जीने के तौर-तरीकों को निर्णायक रूप से, उसके पहले के सामाजिक आचार-व्यवहार से अलगाता है। यह आकस्मिक नहीं है कि न्यायाधीश ने अपने फैसले के लिए जिन राष्ट्रीय नेताओं के दृष्टिकोण को आधार बनाया, वे हैं जवाहरलाल नेहरू और भीमराव अम्बेडकर। नेहरू औपनिवेशिक शासन से मुक्ति के बाद एक नए भारत के लिए आवश्यक नैतिक और सांस्कृतिक बुनियादी तर्क खोजने की कोशिश कर रहे थे। इस खोज में सब कुछ साफ-साफ दिखाई दे रहा हो, ऐसा नहीं था और हर चीज़ को वे सटीक रूप से व्याख्यायित कर पा रहे हैं, ऐसा उनका दावा भी नहीं था। नेहरू के जिस वकतव्य को फैसले में उद्धृत किया गया है, उसमें भी शब्दों की जादुई ताकत के उल्लेख करने के साथ यह भी कहा गया है कि वे पूरी तरह से एक नए समाज की सारी आकांक्षाओं को व्यक्त कर पाने में समर्थ नहीं। वे निश्चितता से भिन्न विचार और मूल्यों के एक आभासी लोक की कल्पना करते हैं। राजनेता

का विशेष गुण माना जाता है फैसलाकुन व्यवहार। नेहरू, इसके बावजूद कि एक तानाशाह बन जाने के लिए उनके पास सारी स्थितियां थीं, हमेशा इससे बचते रहे कि चीज़ों को साफ-साफ और अलग-अलग खाचों में डाल दिया जाए। नेहरू और उन जैसे कुछ और नेताओं को इसका तीखा अहसास था कि लोकतंत्र मानव-जगत की एक नई खोज है और यह दुविधाओं और अनिश्चितताओं को नकारात्मक नहीं मानता। किसी भी चीज़ को, और इसमें मानवीय आचार-व्यवहार शामिल है, हमेशा के लिए तय मान लेना लोकतंत्र के लिए खतरनाक है। इसीलिए वह लगातार आपको अपना मत चुनने के लिए अवसर उपलब्ध कराता है। इसके पीछे यह धारणा है कि आप अपना पिछला मत बदल सकते हैं और ऐसा करते हुए आपको शर्मिंदा होने की ज़रूरत नहीं। विचारों की सरहदें आखिरी तौर पर नहीं बन जातीं, वैसे ही जैसे जीवन तयशुदा सरहदों के भीतर नहीं पनपता। यह भी नहीं कि सरहदें होती नहीं, लेकिन यह भी उतना ही सच है कि वे उतनी ठोस नहीं होतीं, तरलता उनका विशेष गुण है। कई बार दो बिल्कुल विपरीत दिखाई पड़ने वाली चीज़ों की पड़ताल करने पर यह मालूम होता है उन्होंने एक दूसरे को अपने नज़दीक की चीज़ों के मुकाबले अधिक बदला है या प्रभावित किया है।

मनुष्य के इस स्वभाव की इस तरलता की समझ लोकतंत्र की जीवंतता के लिए अनिवार्य है। लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं के पहले की सामाजिक संरचनाएं इस तरलता को नहीं मानतीं। पूर्ववर्ती व्यवस्थाओं के अलावा लोकतंत्र की समकालीन अन्य व्यवस्थाएं भी तरलता की जगह स्थिरता को मनुष्य और समाज को पारिभाषित करने के लिए आधार बनाती हैं। इसीलिए किसी एक धार्मिक विचार या किसी एक विचारधारा-विशेष को मानने वाली व्यवस्थाएं इसमें खासी दिलचस्पी लेती हैं कि व्यक्तियों के निजी आचरण के लोक में भी सामान्य माने जाने वाले व्यवहार से विचलन न दिखाई दें। यौन आचरण इन सबके लिए ऐसा क्षेत्र है जिसे नियंत्रित करना सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है। आश्चर्य नहीं कि चाहे वह स्टालिन का समाजवाद हो या हिटलर

का रक्त-शुद्धि पर आधारित फसिस्ट समाज, दोनों में स्त्री-पुरूष के बीच के यौन संबंध के अतिरिक्त किसी और यौन संबंध को असामान्य और इसी वजह से समाज के लिए खतरनाक माना गया। हिटलर ने जिन समुदायों को खत्म करना तय किया उनमें समलैंगिक भी शामिल थे और यही स्टालिन के सोवियत संघ में भी राज्य का रूख था। हमारे अपने समकालीन ईरान में समलैंगिकता जुर्म है और इसके लिए मौत तक की सजा है।

भारत में कानून का राज कायम करने वाले अंगेज़ी साम्राज्य ने व्यक्ति के यौन आचरण को नियमित करने के लिए धारा 377 का प्रावधान किया। इसमें एक प्राकृतिक यौन व्यवहार की कल्पना की गई और माना गया कि पुरूष और स्त्री के यौन संबंध के अलावा कोई भी अन्य यौन संबंध अप्राकृतिक है और इसी कारण दंडनीय है। यह विक्टोरियाई नैतिक धारणा मात्र नहीं। इसमें यह समझ छिपी है कि कोई भी आचरण या संबंध, जो उत्पादक नहीं है, उचित नहीं है और इसीलिए न सिर्फ यह कि उसे प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि उसे वर्जित मान कर यत्नपूर्वक उसे जड़ से उखाड़ दिया जाना चाहिए। उत्पादकता और उपयोगिता को जो वैचारिक संरचना एकमात्र आधार बनाती है, वह यौन संबंध को मानव समाज की अभिवृद्धि का साधन मात्र मानती हैं। न सिर्फ यौन संबंध के मामले में, बल्कि बेकारों और अशक्त लोगों को लेकर ऐसे समाज में अधीरता देखी जाती है। हर किसी को लगातार कुछ न कुछ उत्पादित करते रहना है, वरना वह अनुपयोगी और फिर फालतू माना जाएगा और उसे कूड़ेदान में फेंक दिया जा सकता है। धार्मिक व्यवस्थाओं में दया तो है पर ऐसे लोगों के साथ बराबरी और इज़्ज़त के लिए जगह नहीं है। हमारे देश में ही नेहरू के गुरू गांधी के लिए भी संतानोत्पत्ति से अलग यौन संबंध की कोई वैधता नहीं थी। इस तरह वे धारा 377 के पीछे की अवधारणा के अधिक नज़दीक पड़ते हैं। नेहरू इस मामले में अपने गुरू से भिन्न नज़रिया अपनाते हुए दिखते हैं, इसलिए हर चीज़ का आकलन उत्पादकता या उपयोगिता की कसौटी पर नहीं करते। आनंद उनके लिए अतिरिक्त और इसी वजह से त्याज्य नहीं, यौन

संबंध उत्पादन का ही नहीं, आनंद के सौंदर्य के सन्धान से भी जुड़ा है, इस वजह से उसमें विविधता की गुंजाइश भर की बात नहीं, वह अनिवार्यतः वहां है। मानव समाज की यह अपेक्षाकृत नई समझ है और इसीलिए इसकी नज़ीर हम पहले के समाज से खोजें तो दूसरे खतरों से हमें जूझना होगा।

लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के स्नातोकोत्तर हिंदी विभाग में रीडर हैं और कई सामाजिक और राजनीतिक मुहिमों के साथ सक्रिय हैं।

काफिला वेबसाइट, 17 जुलाई 2009
http://kafila.org/2009/07/17/धारा/377/यौनिकता/और/नेहरू/

भारत : ज़िल्लतभरी ज़िंदगी के बाद एक इज़्ज़तदार ज़िंदगी व्यतीत करने के अधिकार तक का सफर

कल्पना कन्नाबिरन

दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले ने एल.जी.बी.टी. अधिकारों के ज़रिए शोषण, दबाव, सामाजिक बहिष्कार और आज़ादी से न जी पाने की एक आम समझ बनाने के साथ-साथ स्वतंत्रता व सम्मान की परिभाषा को एक नई रौशनी दी है।

''संवैधानिक नैतिकता प्राकृतिक रूप से हमारे अंदर नहीं होती। उसे अपने अंदर विकसित करना पड़ता है। हमें ध्यान रखना चाहिए कि हमारे लोगों को अभी यह सीखना बाकी है।'' – भीमराव अम्बेडकर का वक्तव्य, जिसे नाज़ फाउण्डेशन फैसले के 79वें अनुच्छेद में दोहराया गया है।

हाल ही में, *नाज़ फाउण्डेशन बनाम दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र व अन्य* मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया फैसला, भारत में विविधता तथा बहुलता से संबंधित न्यायशास्त्रों के लिए एक अहम कदम साबित हुआ है। इसके साथ ही इस फैसले द्वारा संवैधानिकता व अंतर्भागीय न्यायशास्त्र के संबंध को परखने की भी शुरुआत हुई है। इस प्रकार, न केवल यह फैसला एल.जी.बी.टी. समुदाय के लिए ज़रूरी है, बल्कि इस फैसले में जिन शब्दों का उपयोग किया गया है, वे आने वाले समय के लिए शोषण, दबाव, सामाजिक बहिष्कार और आज़ादी से न जी पाने की एक आम समझ बनाने के साथ-साथ, स्वतंत्रता व सम्मान को परिभाषित करने के लिए एक नई रौशनी भी देते हैं।

यौनिकता तथा जेंडर पहचान संबंधित मानव अधिकारों के संदर्भ में 26 मार्च 2007 को योग्यकर्ता सिद्धांत घोषित किए गए, जो 25 देशों के विशेषज्ञों द्वारा गठित किए गए हैं और लगभग पूरे विश्व का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन सिद्धांतों में बहुत बारीकी से ध्यान देते हुए कहा गया है, कि हर देश का कर्तव्य है कि वह

प्रत्येक इंसान के, उसकी यौनिकता या जेंडर पहचान के आधार पर भेदभाव किए बिना, मानव अधिकार बहाल करे, उनकी सुरक्षा करे तथा उनको इज्ज़त दे। 18 दिसंबर, 2008 को संयुक्त राष्ट्र, आम सभा में 66 देशों द्वारा हस्ताक्षरित एक वक्तव्य पेश किया गया, जिस में इन देशों ने योग्यकर्ता सिद्धांतों की पुष्टि की थी। इस प्रकार के अंतर्राष्ट्रीय प्रयासों तथा एल.जी.बी.टी. आंदोलन के कारण ही भारत में समलैंगिकता के गैर-अपराधीकरण के लिए संदर्भ तैयार हुआ।

डॉ. अम्बेडकर के कथन को आधार बनाते हुए, न्यायालय ने यह मानने से इंकार कर दिया कि समलैंगिकता भारतीय सामाजिक तथा प्रचलित नैतिकता के विरुद्ध है। न्यायालय ने संवैधानिक नैतिकता को प्राथमिकता देते हुए डॉ.अम्बेडकर के बदलाव के विचार को अपने फैसले का आधार बनाया। फैसले के एक अंश में कहा गया हैः ''भारतीय संविधान में विविधता को पहचान देने के साथ-साथ उसकी सुरक्षा तथा प्रचार करने का प्रावधान है। समलैंगिक व्यक्तियों को अपराधी मानना या उन्हें कलंकित करना संवैधानिक नैतिकता के खिलाफ है'' (अनुच्छेद 80)। इसी से जुड़ा एक और पहलू है न्यायालय द्वारा संविधान की धारा 15(2) के संदर्भ में। अधिकारों को समानांतर रूप से लागू किए जाने के विषय में धारा 15 एक ऐसा अहम पहलू है, जिसे अक्सर लोग भूल जाते हैं। कोई भी नागरिक किसी अन्य नागरिक को उसकी जाति, लिंग या अन्य कारण (जो अनुच्छेद 104 में दिए गए हैं) के आधार पर सार्वजनिक स्थानों पर आने से नहीं रोक सकता। धारा 15(2), जो कि अभी तक केवल दलित संबंधी छुआ-छूत की परंपराओं तक ही लागू की जाती थी, की इस प्रकार की व्याख्या संवैधानिक अधिकारों को एक सामरिक महत्व देती है।

संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार रूपरेखा के आधार पर यौनिकता तथा जेंडर पहचान की समझ बनाते हुए, इस फैसले में 3 श्रेणियां दी गई हैंः (क) भेदभाव रहित; (ख) निजी अधिकारों की सुरक्षा; और (ग) यौनिकता और जेंडर पहचान का भेदभाव न करते हुए सभी मनुष्यों के लिए मानव अधिकार सुनिश्चित करना।

इस फैसले का शायद सबसे महत्वपूर्ण पहलू है संविधान की धारा 15(1) के अंतर्गत दी गई 'सैक्स' की परिभाषाः ''देश में किसी भी व्यक्ति के धर्म, जाति, वर्ग, *सैक्स* (लिंग/यौनिक प्रवृत्ति), उसके जन्मस्थान या इनमें से किसी एक के कारण उसके विरूद्ध भेदभाव नहीं किया जा सकता।'' इस संदर्भ में *सैक्स* शब्द की व्याख्या गुणातमक है या क्रियात्मक? क्या *सैक्स* शब्द को हम केवल लिंग तक ही सीमित रखेंगे या इस शब्द के विभिन्न मायनों पर भी ध्यान दिया जा सकता है, जिससे कि *सैक्स* शब्द का मतलब लिंग (गुणात्मक) तथा यौनिक प्रवृत्ति (क्रियात्मक), दोनों के रूप में देखा जा सके? यह काफी महत्वपूर्ण पहलू है क्योंकि, जैसा कि फैसले में वर्णित विश्व भर के उदाहरणों व कानूनों से स्पष्ट है, लिंग व यौनिक प्रवृत्ति हर इंसान की शख्सियत का अभिन्न अंग हैं; वे हर इंसान की पहचान स्थापित करने के महत्वपूर्ण अंश हैं। दक्षिण अफ्रीका के न्यायाधीश साक्स के शब्दों में, संविधान में ''यह माना गया है कि लोग अपने शरीर, अपनी संस्कृति, अपनी जगह व अपने समय में जीते हैं'' (*द नैशनल कोअलीशन फॉर गे ऐंड लैस्बियन इक्वैलिटि बनाम द मिनिस्टर ऑफ जस्टिस* में साक्स जे.)। हर व्यक्ति की इसी संयोजित पहचान को धारा 15(1) में दिए गए *'सैक्स'* शब्द की बारीक परिभाषा के माध्यम से मान्यता दी गई हैः ''हमारा मानना है कि यौनिक प्रवृत्ति *सैक्स* के अनुरूप है और धारा 15(अनुच्छेद 104) के अंतर्गत यौनिक प्रवृत्ति के आधार पर भेदभाव करना गैर-संवैधानिक होगा।''

जस्टिस पी.एन.भागवती द्वारा *फ्रांसिस कोरली बनाम प्रबंधक, दिल्ली केन्द्रीय क्षेत्र तथा अन्य* मामले में दी गई गौरव के अधिकार की रूपरेखा – ''जीने के अधिकार में मानवीय गौरव और उसके साथ जो भी शामिल होता है, जैसे जीवन की मूल ज़रूरतें, ... अभिव्यक्ति के विविध रूप, आज़ादी से घूमना तथा अन्य मनुष्यों के साथ मिलना-जुलना, यह सभी शामिल है,'' – के आधार पर स्वाभिमान, स्वमहत्व तथा मानवीय सामाजिक जीवन की एकांतता के महत्व पर चर्चा शुरु की जा सकती है, जो राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय, दोनों स्तरों पर महत्वपूर्ण है। खासकर यौन संबंधों के संदर्भ में एकांतता या पर्दानवाज़ी का बहुत ज़्यादा

महत्व है क्योंकि नियम कहता है ''अगर हम अपने यौन संबंधों की अभिव्यक्ति दूसरे व्यक्ति की सहमति से, तथा किसी अन्य व्यक्ति को चोट पहुंचाए बिना करें, तो उसकी सीमा पार करना हमारी एकांतता को भंग करना होगा'' (*पैरिस अडल्ट थिएटर आई. बनाम स्लेटन,* (413 यू.एस. 49 (1973), पृष्ठ 63)।

फैसले में कहा गया है कि समलैंगिकता का अपराधीकरण एक वर्ग विशेष को दोषित करता है, उन्हें ''कानून के हाथों शोषित, अपमानित तथा क्रूर बर्ताव झेलने के लिए मजबूर करता है'' और उन्हें 'संपूर्ण नागरिकता' से वंचित रखता है (अनुच्छेद 52)। धारा 377 के अंतर्गत दो सहमत व्यस्क व्यक्तियों के बीच निजी रूप से बनाए गए यौन संबंध भी आपराधिक माने जाते हैं – इसके कारण ''समलैंगिक लोगों के अधिकारों और उनके हितों को ठेस पहुंचती है तथा उनके स्वाभिमान को हानि होती है'' (अनुच्छेद 93)। यह ''अन्याय है और अतः भारतीय संविधान की धारा 14 का उल्लंघन है'' (अनुच्छेद 98)।

समलैंगिक यौन संबंधों के अपराधीकरण के कारण सार्वजनिक स्वास्थ्य के अधिकार का भी हनन होता है। इस अधिकार के दो अंश हैं और दोनों ही संविधान की धारा 21 के अंतर्गत दिए गए जीवन के अधिकार से संबंधित है। उसमें से पहला है स्वस्थ रहने का अधिकार। इस संदर्भ में, राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण संस्थान द्वारा पहचाने गए मुद्दे महत्वपूर्ण हैं। कानून के डर से लोग अपनी स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के विषय में बात करने से डरते हैं, जिसके कारण एच.आई.वी./एड्स नियंत्रण कार्यक्रमों को लागू करने में भी समस्या आती है और समलैंगिक लोगों में संक्रमण फैलने का खतरा बढ़ जाता है।

जीवन के अधिकार का दूसरा अंश स्वास्थ्य सुविधाओं के अधिकार से संबंधित है और काफी विस्तृत है। इसके अंतर्गत अपने शरीर तथा अपने स्वास्थ्य पर नियंत्रण रखने, यौन संबंध बनाने तथा प्रजनन की स्वतंत्रता, ज़बरदस्ती उपचार करने के विरुद्ध और अच्छे से अच्छे स्तर की, तथा सभी लोगों को बराबरी की नज़र से देखने वाली स्वास्थ्य प्रणाली के अधिकार

शामिल हैं। कई एल.जी.बी.टी. लोगों के अनुभवों के अनुसार उनकी यौनिक प्रवृत्ति को एक मानसिक बीमारी के रूप में देखा जाता है, लेकिन इस फैसले में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि विश्व भर के अध्ययनों में पाया गया कि यौनिक प्रवृत्ति मनुष्य की यौनिकता की अभिव्यक्ति है – चाहे वह समलैंगिकता हो, विषमलैंगिकता या द्विलैंगिकता हो। इस फैसले के अनुसार नैतिकता पर ध्यान न देते हुए ''देश के हित'' में यही है कि ''जन स्वास्थ्य संसाधनों को सुदृढ़ बनाते हुए इस प्रकार के यौन संबंधों का गैर–अपराधीकरण किया जाए, जिससे कि इन स्वास्थ्य समस्याओं की पहचान कर इन पर ध्यान दिया जा सके'' (अनुच्छेद 86)।

फैसले में ज़ोर दे कर कहा गया है कि औपनिवेशक कानूनों के अंतर्गत संवैधानिकता की संभावना नहीं रहती; अतः धारा 377 के उपयोग में उसके उद्देश्यों तथा इसे लागू करने की प्रक्रिया के बीच संतुलन बनाना ज़रूरी है। और जब मामला 'संवैधानिक रूप से अत्यधिक महत्वपूर्ण' हो, जैसे कि एल.जी.बी.टी. समुदाय के अधिकारों का मामला, तो न्यायालयों का उत्तरदायित्व है कि वे अपने प्रधान अधिकार क्षेत्र का पालन करें तथा धारा 377 के दायरे को बाल यौन शोषण तक ही सीमित रखें।

यहां ध्यान दिलाना ज़रूरी है कि धारा 377 के मुकाबले आंध्र प्रदेश (तेलंगाना क्षेत्र) हिजड़ा अधिनियम हिजड़ों पर ज़्यादा व सीधा प्रभाव डालता है। हमें उम्मीद है कि एल.जी.बी.टी. अधिकार आंदोलन इस पुराने कानून को बदलने के लिए भी पुरज़ोर कोशिश करेगा, जिससे कि जहां भी यह कानून लागू है, वहां के ट्रांसजेन्डर समुदाय भी पूरी स्वतंत्रता तथा इज़्ज़त के साथ जीवन व्यतीत कर सकें।

कल्पना कन्नाबिरन सिकंदराबाद स्थित एक समाज शास्त्री हैं।

द हिंदू, 6 जुलाई 2009
http://www.sacw.net/article992.html

ऐतिहासिक जीत

पिटारा

2 जुलाई, 2009 – एक सुनहरा दिन। आज कानून की धारा 377 के खिलाफ चल रही लड़ाई में बड़ी जीत मिली है। दिल्ली हाई कोर्ट ने अपने फैसले में कहा है कि ''वयस्कों के बीच अपने व्यक्तिगत, निजी जीवन में बनाए गए किसी भी प्रकार के यौन व्यवहार अपराध नहीं हैं।'' इसको लेकर दिल्ली के जंतर-मंतर के पास बड़ी चहल-पहल है। ढेर सारे लोग रंग-बिरंगे पोस्टर-बैनर लेकर खड़े हैं। कोई गा रहा है 'आदमी हूँ, आदमी से प्यार करता हूँ', तो कोई 'बावरा मन चाहे, देखने चला एक सपना' की धुन पर झूम रहा है। दूसरी जगह भी विविध यौनिक पहचानवाले लोग खुशी ज़ाहिर कर रहे हैं। अखबारों में और टेलिविज़न पर ये खबरें छाई हुई हैं। जिन लोगों ने कभी यौनिकता के मुद्दे पर बात नहीं की होगी, वे भी बोल रहे हैं। घर-बाहर चारों तरफ खुलकर इस पर चर्चा हो रही है। सालों की चुप्पी मानो रातों-रात टूट गई है। आखिर अदालत का यह फैसला इतना महत्वपूर्ण क्यों है?

धारा 377 बहुत पुराना कानून है। 1860 में इसे अंग्रेज़ों ने बनाया था। यह उन्होंने इंग्लैंड के उस समय के समाज की नैतिकता के आधार पर बनाया था। उसे हिंदुस्तान में भी लागू कर दिया। धारा 377 के अनुसार किसी पुरूष, महिला या पशु के साथ 'प्राकृतिक नियमों' के विरूद्ध यौन संबंध बनाने वाला अपराधी है। इसके अनुसार दो वयस्कों के बीच मुख मैथुन, गुदा मैथुन आदि क्रियाएँ अप्राकृतिक हैं। ऐसा करने वाले को आजीवन या फिर 10 साल तक की जेल की सज़ा हो सकती है। उसे जुर्माना भरना पड़ सकता है। इस कानून में उन सभी यौन क्रियाओं को अप्राकृतिक और गलत करार दिया गया है, जो प्रजनन से जुड़ी नहीं। इसलिए यह कानून सभी पर लागू था – चाहे वे शादीशुदा ही क्यों न हों। लेकिन इसके आधार

पर खासकर समलैंगिक लोगों को प्रताड़ित किया गया है। इसमें सहमति के साथ और सहमति के बिना बनाए गए संबंधों में कोई फर्क नहीं किया गया है।

हमारे देश में इस कानून के खिलाफ आंदोलन की शुरूआत हुई। सबसे पहले 1994 में एड्स भेदभाव विरोधी आंदोलन (ए.बी.वी.ए.) ने अदालत में इसके लिए अर्जी यानी याचिका दी थी। फिर 2001 में दिल्ली हाई कोर्ट में जनहित याचिका (पी.आई.एल.) डाली गई। 'नाज़ फाउण्डेशन' नामक एक गैर-सरकारी संस्था ने यह पहल की थी। इसकी कानूनी लड़ाई 'लॉयर्स कलेक्टिव' नाम की संस्था के माध्यम से लड़ी जा रही थी। इस याचिका में कहा गया कि यह कानून व्यक्ति के 'जीवन जीने का अधिकार' के खिलाफ है। इसका इस्तेमाल समाज द्वारा शोषण और भेदभाव को बढ़ावा देता है।

चूँकि धारा 377 का उपयोग बच्चों के खिलाफ यौन शोषण को रोकने के लिए भी होता है, इसलिए याचिका में खास माँग की गई। उसमें पूरी तरह कानून खत्म करने की बात नहीं उठाई। माँग की गई कि निजी ज़िंदगी में बालिग व्यक्तियों के बीच सहमति से बनाए गए यौन संबंधों को अपराध न माना जाए।

देश में 2003 में भाजपा के नेतृत्व वाली एन.डी.ए. की सरकार थी। सरकार ने कहा कि इस कानून में बदलाव से मनमाने यौन व्यवहार को छूट मिल जाएगी। उसका तर्क था कि हिंदुस्तान के लोगों के लिए समलैंगिकता मुद्दा नहीं है। इसके जवाब में महिला अधिकार, बाल अधिकार, स्वास्थ्य अधिकार, मानवाधिकार आदि के लिए काम करने वाले कुछ संगठन सामने आए। उन्होंने इस मुद्दे पर एक मंच बनाया। इसका नाम था 'वॉयसेज़ अगेंस्ट 377'। इस मंच ने समलैंगिकता के मुद्दे पर जागरूकता बढ़ाने का काम किया। 2006 में दिल्ली हाई कोर्ट में मुख्य याचिका के समर्थन में एक याचिका दी। इन्हीं याचिकाओं पर सुनवाई करते हुए 2 जुलाई, 2009 को फैसला आया था।

फैसला देने वाले जज शाह और जज मुरलीधर ने तर्क दिया, ''हमारे संविधान का मूल मूल्य अलग-अलग लोगों को सम्मिलित करने का है। हमारा यह मानना है कि यह मूल्य पीढ़ियों से समाज में बसा है।'' जजों ने पंडित नेहरू, डॉ. अंबेडकर आदि के हवाले से कहा कि देश का संविधान दुनिया को अपने सपनों और आशाओं के बारे में बताता है। यदि समाज द्वारा कुछ लोगों के प्रति भेदभाव किया जाता है तो यह ज़रूरी नहीं कि संविधान भी इसी बात को मान्यता दे। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया, ''संविधान साफ कहता है कि धर्म, जाति, लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता। यहाँ 'लिंग' की परिभाषा में 'लैंगिकता' को शामिल करना चाहिए।'' यानी फैसले के मुताबिक जिस तरह जेंडर के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता, आज से यौनिकता के आधार पर भी भेदभाव करना संविधान के खिलाफ है।

इस ऐतिहासिक फैसले का विरोध करने वालों की भी कमी नहीं। कुछ धर्मगुरू और राजनीतिक दल भी हल्ला मचा रहे हैं। शायद किसी भी क्रांति की शुरूआत से समाज के नियमों को धक्का पहुँचता ही है। जैसे 1856 में विधवाओं को दोबारा शादी करने की इजाज़त देने वाले कानून पर भयानक हंगामा हुआ था। मगर लड़कर हासिल की गई ऐसी सफलताओं से हमें बदलाव की उम्मीद दिखाई देती है।

आपका पिटारा 1994 से सरल हिंदी में प्रकाशित होनेवाली द्वैमासिक पत्रिका है। पिछले अंकों में लिए गए विषयों के कुछ उदाहरण हैं : खाना, खेती, अंतरिक्ष, भाषा और लोकनाटक।

आपका पिटारा, अंक 96,
चाहतः यौनिकता की विविधता और राजनीति
प्रकाशनः निरंतर, नई दिल्ली, 2009

शब्दों का चमत्कार

लौरेन्स लियैंग और सिद्धार्थ नारायण

भारतीय दंड संहिता की धारा 377, जिसके अंतर्गत भारत में समलैंगिकता एक आपराधिक कृत्य था, उसे दिल्ली उच्च न्यायालय के *नाज़ फाउण्डेशन* फैसले द्वारा गैर-आपराधिक घोषित कर दिया गया। धारा 377 के खिलाफ पिछले कई सालों से चल रहे आंदोलन ने स्वाभाविक रूप से इस कानूनी बदलाव का स्वागत किया। लेकिन इसे केवल एल.जी.बी.टी. समुदाय की सफलता मानना गलत होगा क्योंकि यह फैसला न केवल अपने आप में प्रगतिशील है, बल्कि यह फैसला बेहद तर्कपूर्ण है और इसमें भारतीय न्यायशास्त्रों में समानता का मूल्य लाने की भी बहुत संभावनाएं हैं।

इसके अतिरिक्त, इसे केवल एल.जी.बी.टी. समुदाय की सफलता मानने से ऐसा लगेगा कि हमें संवैधानिक बदलाव और न्यायपूर्ण तथा लोकतांत्रिक समाज बनाने के लिए चल रहे सामाजिक आंदोलनों के बीच के रिश्ते की बेहद सूक्ष्म समझ है। जैसे कि *रो बनाम वेड* मामला, जिसके माध्यम से अमेरिका में गर्भपात को कानूनी मान्यता मिली, या *ब्राउन बनाम शिक्षा बोर्ड* मामला, जिसके माध्यम से शिक्षा संस्थानों में कुल एवं जाति का विभाजन करने की प्रथा खत्म हुई। इन फैसलों की तरह ही *नाज़ फाउन्डेशन* फैसले में भी एक ऐसा उदाहरण बनने की क्षमता है, जिसके नाम से ही एक आंदोलन के इतिहास, एक महत्वपूर्ण जीत तथा भविष्य के लिए एक नई आशा जगती हो। यह जीत इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे असंभव को संभव बनाने की संभावना की आशा मिलती है। इस फैसले ने ख़्वाब में भी असंभव प्रतीत होने वाली वास्तविकता को संभव बना दिया, जिससे न केवल उन लोगों की स्थिति में बदलाव आएगा जिनके अधिकार तथा मांगें इससे संबंधित हैं, बल्कि इससे कानूनी तथा संवैधानिक बदलाव का सीमित दायरा भी खुलता हुआ दिखाई देता है।

इस लेख में हम उच्च न्यायालय के इस फैसले के दो पहलुओं का अध्ययन करेंगे। पहला, कि संवैधानिक संभावनाओं के संदर्भ में इसका क्या असर होगा तथा दूसरा, कि एल.जी.बी.टी. समुदाय की रोज़मर्रा की जिंदगी पर इसका क्या प्रभाव हुआ है।

संविधान केवल सरकारी अधिकारपत्र ही नहीं, यह एक सामूहिक मूल्यों को अंकित करता हुआ दस्तावेज़ भी है, जिसके माध्यम से एक समुदाय के सदस्य अपने लिए वांछित ज़िंदगी के सिद्धांतों के प्रति अपनी सामूहिक वचनबद्धता व्यक्त करते हैं। इसलिए हम अपने समाज को संचालित करने के लिए जिस प्रकार की राजनैतिक व्यवस्था चुनते हैं वह हमारे व्यक्तिगत जीवन तथा अन्य लोगों के साथ हमारे रिश्तों पर लागू नियमों से अलग नहीं है। इसी प्रकार, मैं किसे और कैसे प्यार करना चाहता हूं, यह मेरी व्यक्तिगत पसंद होने के साथ-साथ मेरी राजनीतिक अभिव्यक्ति भी है।

नेहरू के वक्तव्य का फैसले में अनुगमन करते हुए, कि शब्द चमत्कारी होते हैं, संविधान को एक शाब्दिक संसार के रूप में देखा गया है, जो अपनी भूमिका के मूलभूत वचन की नींव पर खड़ा है - अपने नागरिकों के लिए न्यायपूर्ण, स्वतंत्र, समानता तथा बंधुत्व भरा जीवन सुनिश्चित करना तथा यह याद रखना कि इन्हीं मूल्यों के आधार पर हमनें खुद को एक संविधान के तहत सामूहिक रूप से संगठित करना मंजूर किया था। इस शाब्दिक संसार में यह माना गया है कि ''हम'' का भाव हमेशा से ही हमारे बीच मौजूद रहा है और रहेगा। लेकिन हम सभी जानते हैं कि वास्तविक जीवन शाब्दिक संसार की परिकल्पना से हमेशा मेल नहीं खाता, बल्कि ज़्यादातर वास्तविक संसार में वचन पूरे नहीं होते, और जैसा कि लैंग्स्टन ह्यू ने कहा था, सपने अधूरे रह जाते हैं। और यह खासकर संवैधानिक रूप से सीमांत वर्गों की हक़ीकत है जो अपने वर्ग, जाति या यौनिक प्रवृत्ति के कारण असंस्थापित ही रह जाते हैं। लेकिन क्या यह सच नहीं है कि एक आदर्श समुदाय बनाने तथा शाब्दिक संसार और वास्तविक संसार के बीच के अंतर को मिटाने के प्रयासों को ही हम राजनीति कहते हैं? इन दोनों स्थितियों के

बीच गुज़ारे गए फासले में ही आंदोलन बसा है। और आखिर में राजनीति और आंदोलनों के माध्यम से ही अधिकार स्थापित होते हैं। केवल कानूनी परिकल्पना के कोहरे में ही यह माना जा सकता है कि अधिकार न्यायिक लेखन के कारण प्राप्त होते हैं। और इस तथ्य को *नाज़* फैसले में भी माना गया है कि संविधान अधिकारों की रचना नहीं करता, वह केवल अधिकारों की मौजूदगी की पुष्टि करता है।

इसी तरह यह मानना भी गलत होगा कि संविधान में वह सभी मूल्य स्थिर रूप से शामिल हैं, जिनको हासिल करने के लिए हम संघर्ष कर रहे हैं। संविधान के आधार पर मौलिक बदलाव उसी हद तक लाए जा सकते हैं जिस हद तक हम खुद बदलने के लिए तैयार हैं – केवल आधिकारिक या न्यायिक व्याख्या के आधार पर ही नहीं – बल्कि आंदोलनों के इतिहास की संपूर्ण समझ तथा अपने जीवन के विभिन्न पहलुओं में समानता और स्वाधीनता अपनाकर।

स्टैनली कैवल ने अपनी पुनर्विवाह हास्य कहानियों की किताब, *द पर्सूट ऑफ हैपीनैस* (सुख की तलाश) में कहा है कि जीवन, स्वाधीनता तथा सुख की तलाश के संवैधानिक वादों का एक आम रूप होता है जो इन अधिकारों को कानूनी रूप से प्राप्त करने के तरीकों में निहित है। लेकिन साथ ही इन दावों का एक निजी रूप भी होता है, जो अक्सर ''प्रेम के छोटे-छोटे समुदायों'' में निहित होता है। आम तथा निजी रूप को एकसम करने के लिए ज़रूरी है कि हम जानें कि इन छोटे-छोटे समुदायों को बनाने के लिए मानवीय समाज में क्या स्थितियां मौजूद हैं।

आखिर *नाज़ फाउण्डेशन* फैसला और क्या है अगर वह इसी प्रकार के एक समुदाय के प्यार की अभिव्यक्ति, तथा इस अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा आत्म-सम्मान बनाए रखने का अधिकार नहीं है। लेकिन ऐसा प्यार, जो अपना नाम लेने से भी डरता है, को कानूनी रूप से मान्य बनाए जाने के लिए क्या रास्ते हैं? लौरेन्स ट्राईब (जो हारवर्ड लौ स्कूल में संवैधानिक

कानून के जाने माने शोधकर्ता हैं) के अनुसार, इसका एक ही उपाय है और वह है ऐसा अधिकार जो अपना नाम लेने की हिम्मत करता हो। दूसरे शब्दों में, समानता, आत्म-सम्मान तथा न्याय की हमारी समझ व इनके प्रति हमारी वचनबद्धता केवल वैचारिक सैद्धांतिक मूल्य या राजनैतिक इच्छा नहीं है, बल्कि यह हमारी अपनी मूल्यात्मक कल्पनाओं पर भी आधारित हैं। कैवेल के अनुसार, प्यार करने वालों के छोटे समुदाय केवल कानूनी अपील या अकेलेपन के भाव के आधार पर गठित नहीं किए जा सकते। यह तो मानवीय समाज में दोनों संभावनाओं की मौजूदगी का प्रतीक है। पर हम एक परिपूर्ण समाज के बनने के इंतज़ार में नहीं बैठ सकते कि उसके बाद ही ऐसे छोटे समुदायों को स्थापित किया जा सके। नाज़ फाउन्डेशन फैसला आने के बीच के समय में एल.जी.बी.टी. समुदाय ने इस आदर्श की ओर अपनी वचनबद्धता को एक प्रकार के प्रेम के लिए अपनी प्रतिबद्धता के आधार पर पुनः परिभाषित कर लिया था। उच्च न्यायालय ने व्यक्तित्व तथा व्यक्तिगत स्वायतता को प्राथमिकता देते हुए संविधान को संवेदनशील स्थिति में खड़ा कर दिया - काफी अच्छे तरीके से - जिससे कि समानता तथा आत्म सम्मान के मूल्यों को पुनः परिभाषित किया जा सके - और यह एक ऐसा महत्वपूर्ण कदम सिद्ध हुआ है, जो हमारे अपूर्ण संसार को शाब्दिक संसार की परिपूर्णता के करीब ला सकता है।

लेकिन जैसा कि फैसले में उपयुक्त नेहरू का वक्तव्य हमें याद दिलाता है, 'शब्दों का चमत्कार भी कभी कभी मानवीय उत्साह और राष्ट्रीय जोश के चमत्कार को व्यक्त नहीं कर पाता है', और हम लोग, जो शाब्दिक संसार की ओर प्रेरित रहते हैं, कभी कभी भूल जाते हैं कि मानवीय उत्साह हमेशा चीख-चीख कर अपना ढिंढोरा नहीं पीटता। ट्रेसी चैपमैन ने एक बार क्रांति के विषय में लिखा था कि कैसे उसकी आवाज़ एक हल्की सरसराहट के समान होती है। सुना है कि एक बंदी ने अपने कारावास की मोटी दीवारों को हल्की फुसफुसाहट भरी कहानियों से ही पिघला दिया था। *नाज़ फाउण्डेशन* मामला ऐसा ही एक उत्तम उदाहरण है जो स्थापित कर देता है कि सामाजिक परिवेश में प्रतिकूलता की अभेदनीय दीवारों को, जो सामाजिक व्यवस्थाओं

को प्रेरित करती है, किस प्रकार भेदा जा सकता है और उसकी खबर फैलाने के लिए केवल हल्की सरसराहट ही काफी है। और जिस तरह *नाज़ फाउण्डेशन* फैसले ने यौनिकता के विषय पर आम चर्चा करने के लिए हमें विवश कर दिया, यह अभी से एक क्रांति का संकेत दे रहा है।

इसका एक अच्छा परिणाम यह हुआ कि विभिन्न सामाजिक व राजनैतिक स्तरों पर समलैंगिकता के विषय में राष्ट्र-स्तरीय चर्चाएं शुरु हो गई हैं। इस 105 पृष्ठ लंबे फैसले ने एक ऐसा मुद्दे को उजागर कर दिया है जिस पर आज तक घरों में केवल हल्के-दबे स्वरों तथा शर्म के साथ ही बात हो पाती थी। सार्वजनिक स्तर पर चर्चाएं खुलने के कारण अब समलैंगिकता तथा धारा 377 के प्रभावों के विषय में लोग घरों, ऑफिसों और स्कूलों में खुलकर चर्चा कर सकते हैं। ''मेरे पापा ने मुझे फोन करके बधाई दी'', हमारे एक समलैंगिक दोस्त की खुशी का कोई ठिकाना नहीं था। हांलांकि इस दोस्त ने अपनी यौनिकता के विषय में अपने मां-बाप को बता दिया था, उसे घर में इस विषय पर खुल के बात करने में काफी परेशानी होती थी। ''इस फैसले के बाद, मीडिया में उठाए जा रहे मुद्दों के कारण हर दूसरे दिन हमारे घर में समलैंगिकता के किसी न किसी पहलू के विषय में बात होती है'', उसने हमें बताया।

इस फैसले के कारण इस मुद्दे को सामाजिक स्तर पर एक नई मान्यता तथा सम्मान मिला है। फैसला आने के कुछ दिन बाद ही हमें एक स्कूल ने कक्षा 11 व 12 के छात्रों से इस विषय में बात करने के लिए बुलाया। हांलांकि ऐसा बहुत पहले होना चाहिए था, *नाज़* मामले के कारण कई ऐसे सार्वजनिक स्थलों पर समलैंगिकता के विषय में चर्चाएं करने के मौके खुले हैं - जैसे कि स्कूल, कालेज, मीडिया, गैर सरकारी संस्थाएं तथा उनको आर्थिक सहयोग देने वाले संस्थान आदि। वकील होने के नाते हमें पता चला कि इस फैसले के कारण पुलिस के साथ समलैंगिकता के संदर्भ में बात करना काफी आसान हो गया। इस फैसले के बाद हमारी वकालत में जो पहला धारा 377 का केस आया, उसमें एक 26 वर्षीय पुरुष ने जिस लड़के के साथ

रात गुज़ारी, वह लड़का उसके घर से लैपटौप, मोबाइल फोन और अन्य कीमती सामान लेकर भाग गया। शुरुआत में तो पुलिस ने मदद की लेकिन जब उन्हें पता चला कि शिकायत दर्ज़ करने वाला लड़का 'गे' (समलैंगिक यौनिक प्रवृत्ति वाला व्यक्ति) है तो उनका रवैया बदल गया। सब-इंस्पैक्टर ने हमारे मुवक्किल को उसका सामान लौटाने से इंकार करते हुए उसे धमकी दी कि अगर वह उसे रु. 30,000 नहीं देगा तो वह उस लड़के को धारा 377 के अंतर्गत हिरासत में ले लेगा। हमें उसके वरिष्ठ अफसर से बात करके लैपटौप लेना पड़ा। इसके बाद हमने उस सब-इंस्पैक्टर से इस फैसले के विषय में बात की और उसे बताया कि इस फैसले से स्पष्ट है कि हमारा समाज बदल रहा है। आखिरकार सब-इंस्पैक्टर ने माना कि समलैंगिक लोग अपने घरों के अंदर क्या करते हैं उससे उसे कोई मतलब नहीं है।

हांलांकि इस फैसले से समलैंगिकता का केवल गैर-अपराधीकरण हुआ है, लेकिन समलैंगिक लोगों के समान अधिकारों तथा जेंडर और यौनिकता के विषय पर न्यायाधीशों की टिप्पणियों से इस विषय पर चली आ रही चर्चाओं में एक व्यापक एवं सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। यहां तक कि इस मामले को न्यायालय में लड़ रहे लोग भी हैरान रह गए जब टाइम्स ऑफ इंडिया अखबार में समलैंगिक लोगों द्वारा इस फैसले का हवाला देते हुए शादियां करने की खबरें छपीं। इसके फलस्वरूप, एक ज्योतिष ने सर्वोच्च न्यायालय में केस दायर किया है कि इस फैसले के कारण अन्य समस्याओं के साथ-साथ एल.जी.बी.टी. समुदाय अब शादी करने, विरासत में हिस्सा मांगने जैसे अधिकारों की भी मांग करने लगेंगे। शुक्र है कि हम नीरो जैसे दावों से बचे हुए हैं जिसका मानना था कि समलैंगिकता के कारण ही पृथ्वी पर भूकंप आते हैं! भूकंप का कारण बनने के मुकाबले नैतिकता के भ्रष्ट होने का कारण बनना और उसका सामना करना शायद ज़्यादा आसान होगा, चाहें हम सभी जानते हैं कि इस फैसले का समाज में वाकई एक भूकंपीय प्रभाव पड़ा है!

एक अन्य अनूठे मामले में एक व्यक्ति ने शादी के संदर्भ

में हमारे एक जानकार वकील से बात की। उसे जब बताया गया कि उसे अपने साथी की संपत्ति पर अधिकार नहीं है, तो उसने बड़ी आशा से पूछा, ''तो फिर उस केस का क्या फायदा हुआ?'' ''कौन सा केस'', वकील ने पूछा, जिसे कुछ समझ नहीं आ रहा था। उस महिला ने फिर कहा, ''क्या दिल्ली उच्च न्यायालय के केस से समलैंगिक लोगों को बराबर अधिकार नहीं मिले?'' हो सकता है कि इस समय हर अधिकार क्षेत्र में समलैंगिक लोगों के समान अधिकारों को हासिल करना नामुमकिन लगता हो, यह बहुत दूर भी नहीं है। विभिन्न कानूनी विश्लेषकों ने इस फैसले में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 15 में दिए गए भेदभाव-विरोधी प्रावधानों तथा ''यौन'' शब्द की व्याख्या में केवल यौन कर्म नहीं बल्कि यौनिक रूझान शामिल करने की सराहना करते हुए कहा है कि इस व्याख्या से अन्य अल्पसंख्यक समुदायों को भी लाभ हो सकता है। न्यायालय ने कहा है कि किसी व्यक्ति को ''पुरुष'' या ''महिला'' होने के पूर्व परिभाषित दायरों के अनुसार जीने पर मजबूर करना, ''सैक्स'' (कर्म/यौनिकता) के आधार पर भेदभाव करना है, अतः संविधान के अनुच्छेद 15 का उल्लंघन है। न्यायालय के अनुसार :

''सैक्स'' (कर्म/यौनिकता) के आधार पर भेदभाव न करने का संवैधानिक अधिकार इसलिए दिया गया है कि किसी व्यक्ति के विरुद्ध, उससे अपेक्षित ''साधारण'' व ''स्वाभाविक'' जेंडर व्यवहार न कर पाने के कारण, भेदभाव न हो। यौनिक रूझान के आधार पर भेदभाव करने के पीछे भी इसी प्रकार की जेंडर अपेक्षाएं तथा उनसे जुड़े नैतिक सवाल हैं।'' (पृष्ठ 99)।

न्यायालय ने जिस प्रकार ''कड़ी जांच'' और देश के सभी नागरिकों के लिए बराबरी से अधिकार लागू करने की बात की है उससे स्पष्ट है कि संवेदनशील समुदायों जैसे विकलांग लोगों, महिलाओं और धार्मिक अल्पसंख्यकों के विरुद्ध भेदभाव करना और भी मुश्किल हो जाएगा। ध्यान देने वाली बात यह है कि इस व्याख्या में धार्मिक अल्पसंख्यक भी शामिल किए गए हैं, जिन्होंने आज तक या तो समलैंगिकता के विषय में मिली जुली

प्रतिक्रिया दी है या उसका कड़ा विरोध करते आए हैं। *नाज़* फैसले के कारण अल्पसंख्यक अधिकारों के सशक्तिकरण की संभावनाएं इसलिए भी बढ़ जाती हैं क्योंकि न्यायाधीशों ने स्पष्ट कहा है कि सार्वजनिक नैतिकता तथा बहुमत को संवैधानिक नैतिकता और मूलभूत अधिकारों की सुरक्षा से अधिक महत्व या प्राथमिकता नहीं दी जा सकती।

न्यायालय द्वारा दी गई 'व्यक्तिगत गोपनीयता' की परिभाषा को केवल जगह या घर के अंदर की गोपनीयता के दायरे से बढ़ाकर स्वायतता तथा व्यक्तित्व को भी शामिल किया है। इसका मतलब है कि धारा 377 सार्वजनिक स्थलों पर भी लागू नहीं की जा सकती, जहां अधिकतर समलैंगिक प्रेमसंबंध बनते हैं। व्यक्तिगत गोपनीयता की यह विस्तृत परिभाषा अन्य कार्यक्षेत्रों, जैसे कि महिला पुनर्जनन अधिकारों के लिए भी महत्वपूर्ण हो सकती है।

दोनों लेखक औलटर्नेटिव लौ फोरम (वैकल्पिक कानून मंच) के सदस्य हैं।

हिमल, अगस्त 2009
http://www.himalmag.com/Magic-in-the-city-of-words-_nw3197.html

नाज़ फैसले के बाद तो जैसे मीडिया में कोहराम सा मच गया। कई राष्ट्रीय चैनलों ने इस फैसले का न्यायालय से सीधा प्रसारण किया। कुछ ही घंटों में अंतर्राष्ट्रीय चैनलों, जैसे कि सी.एन.एन.[1], बी.बी.सी.[2] और न्यू यौर्क टाइम्स[3] पर भी इस फैसले की खबर छा गई। विभिन्न राजनैतिक एवं सांस्कृतिक संस्थानों की प्रतिक्रियाएं भी तुरंत आने लगीं। कई मानव अधिकार संस्थाओं, जिसमें यू.एन.एड्स भी शामिल है, ने इस फैसले का स्वागत किया। इनका कहना है कि भारत में लाखों लोगों के इज़्ज़त से जीने का अधिकार बनाए रखने के लिए यह एक महत्वपूर्ण कदम है[4]। कार्यकर्ताओं तथा संवाददाताओं ने भी इस फैसले की प्रशंसा करते हुए कहा कि उच्च न्यायलय ने एक तर्कशील तथा मानवीय फैसला दिया है[5]। केन्द्रीय कानून मंत्री ने कहा कि सरकार को किसी नतीजे पर पहुंचने से पहले, इस फैसले का विस्तार से अध्ययन करना होगा[6]। प्रधान

1 सी.एन.एन. इंटरनैशनल, ''इंडियन कोर्ट : गे सैक्स इज़ लीगल,'' 2 जुलाई 2009 : http://edition.cnn.com/2009/WORLD/asiapcf/07/02/india.sex.ruling/index.html?eref=edition_world

2 बी.बी.सी. न्यूज़, ''गे सैक्स डीक्रिमिनलाईज़्ड इन इंडिया,'' 2 जुलाई 2009 : http://news.bbc.co.uk/2/hi/south_asia/8129836.stm; BBC News, "Gay sex ruling:views from India," 2 July 2009: http://news.bbc.co.uk/2/hi/south_asia/8130737.stm

3 न्यू यौर्क टाईम्स, ''इंडियन कोर्ट ओवरटर्न्स गे सैक्स बैन,'' 2 जुलाई 2009 : http://www.nytimes.com/2009/07/03/world/asia/03india.html

4 द हिंदू, ''जजमैंट औन सैक्शन 377 वैलकम्ड,'' 3 जुलाई 2009 : http://www.hindu.com/2009/07/03/stories/2009070361381800.htm

5 द हिंदू, ''ऐडमिरेबल जजमैंट : विक्रम सेठ,'' 3 जुलाई 2009 : http://www.hindu.com/2009/07/03/stories/2009070361472000.htm

6 द हिंदू, ''वी नीड टू ऐक्ज़ामिन द डीटेल्स औफ द वरडिक्ट, सेज़ मौइली,'' 3 जुलाई 2009। http://www.hindu.com/2009/07/03/stories/2009070361391800.htm

मंत्री को रिपोर्ट देने के लिए वे बाद में केन्द्रीय गृह मंत्री तथा स्वास्थ्य मंत्री से मिले[7]।

लेकिन इस फैसले के लिए सभी प्रतिक्रियाएं सकारात्मक नहीं थीं। कुछ धार्मिक नेताओं ने इस फैसले का खुलकर विरोध किया। विरोधात्मक पहलू यह है कि जमात-ए-इस्लामी के अध्यक्ष ने सभी धर्मों के नेताओं से अनुरोध किया कि वे अपने अंतर्विवादों को पीछे छोड़कर, एक स्वर में समलैंगिक यौन संबंधों के

विरोध में आवाज़ उठाएं[8]। कुछ रूढ़िवादी राजनैतिक नेताओं ने भी चर्चाओं में भाग लेते हुए इस फैसले के प्रति अपनी नाखुशी ज़ाहिर की[9]।

लेकिन इतने शोरगुल के बावजूद, *नैशनल काउंसिल फौर चर्चेज़ इन इंडिया,* गिरजाघरों की एक राष्ट्रीय संस्था ने एक दस्तावेज़ जारी किया जिसमें सभी सदस्य गिरजाघरों से आग्रह किया गया कि वे ''विभिन्न यौनिकताओं वाले लोगों की जीवनयात्रा में उनका साथ निभाएं''। इसमें गिरजाघरों से अनुग्रह किया गया कि वे मानवीय यौनिकताओं के विषय में विचार-विमर्श करें और यह भी प्रस्ताव रखा गया कि धार्मिक ग्रंथों का विभिन्न यौनिकताओं के लोगों को ध्यान में रखकर पुनः विश्लेषण किया जाए[10]। देश के दो प्रमुख राजनैतिक दलों ने भी अपना मत स्पष्ट नहीं किया जबकि वामपंथी दलों तथा राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी ने इस फैसले का स्वागत किया। कुछ धार्मिक दलों के विरोध के अतिरिक्त, देश के विभिन्न धार्मिक दल, समलैंगिकता के

---

7 एन.डी.टी.वी., '' गवर्नमैंट डिवाईडेड औन सैक्शन 377?,'' 4 जुलाई : 2009 http://www.ndtv.com/news/india/govt_divided_on_section_377.php

8 द हिंदू, ''मुस्लिम क्लैरिक्स फील फैमिली सिस्टम विल बी डिस्ट्रौयेड,'' 3 जुलाई 2009: http://www.hindu.com/2009/07/03/stories/2009070361341800.htm

9 डी.एन.ए. इंडिया, '' डीक्रिमिनलाईज़िंग होमोसैक्शुऐलिटि विल सैन्ड द रौन्ग सिग्नल्स,'' 8 जुलाई 2009 : http://www.dnaindia.com/bangalore/interview_decriminalisinghomosexuality-will-send-wrong-signals_1272161

10 http://www.indiancatholic.in/news/storydetails.php/12908-1-6-Protestantleaders:- Churches-need-to-rethink-stance-on-homosexuality

गैर–अपराधीकरण का एकमत से विरोध नहीं कर रहे हैं। इसी प्रकार इस विषय पर राजनैतिक दलों का मत भी एक–दूसरे से अलग है।

लेकिन अधिक रूढ़िवादी दलों ने मिलकर, सर्वोच्च न्यायालय में विशेष अवकाश याचिकाएं दायर कीं जिनमें वे इस फैसले पर तब तक रोक लगाने का आग्रह कर रहे थे, जब तक कि अपील का फैसला न हो जाए। इनमें से एक थे बाबा रामदेव, जिन्होंने शंका जताई कि समलैंगिक रिश्तों के गैर–अपराधीकरण के कारण, समाज में समलैंगिकता और अधिक फैलेगी और इसके परिणामस्वरूप भारत की जनसंख्या वृद्धि में नकारात्मक प्रभाव पड़ेंगे। उनका यह भी दावा था कि समलैंगिकता की बीमारी का योग एवं ध्यान लगाने से इलाज हो सकता है[11]। (बाबा रामदेव के इस वक्तव्य से उत्तेजित होकर, मानवेंद्र सिंह गोहिल, जो राजपीपला पूर्व राज्य के समलैंगिक राजकुमार हैं, ने वक्तव्य दिया कि दस वर्षों के उनके योग अभ्यास ने, उन्हें एक गौरवशाली समलैंगिक बना दिया है।)[12]

9 जुलाई को एक सुनवाई में सर्वोच्च न्यायालय ने एक अन्य याचिका दायर करने वाले व्यक्ति, सुरेश कुमार (जो खुद को एक ज्योतिष बताते हैं) की दलीलें सुनीं। श्री. कुमार का कहना था कि इस फैसले के कारण, देश भर में समलैंगिक शादियों की मुहिम लग गई है और सर्वोच्च न्यायालय को, जल्द ही शादी के सामाजिक बंधन को बचाने के लिए कोई कदम उठाना होगा। उन्होंने यह भी कहा कि 'यह भारतीय संस्कृति का सवाल है', हांलांकि इस प्रश्न पर न्यायालय में पहले ही काफी चर्चा हो चुकी थी। उनकी याचिका के अनुसार : ''उच्च न्यायालय ने इस तथ्य को पूरी तरह से नज़रंदाज कर दिया है कि भारतीय समाज अभी भी अधिकांश रूप से रूढ़िवादी

11 द हिंदू, ''बाबा रामदेव टु चैलेंज कोर्ट वर्डिक्ट औन गे सैक्स,'' 7 जुलाई 2009 : http://www.hindu.com/thehindu/holnus/002200907072033.htm

12 डी.एन.ए. इंडिया, ''होमोसैक्शुअल प्रिंस डेयर्स योगीज़ टु 'क्योर' हिम,'' 31 जुलाई 2009 : http://www.dnaindia.com/india/report_homosexual-prince-dares-yogis-tocure-him_1278869

तथा पुरातन प्रवृत्ति रखता है तथा देश के मुख्य मैट्रो शहरों का चमकीला भड़कीला समाज (जो केवल 6 से 7 प्रतिशत ही है), भारत के समूचे समाज का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता, जिसके आधार पर भारतीय सामाजिक एवं सांस्कृतिक धाराओं को समझा जा सके''[13]। उनके इस तर्क के अनुसार पुरातन समाज चमकीले समाज से बेहतर है।

सर्वोच्च न्यायालय ने केन्द्रीय सरकार का मत स्पष्ट किए जाने तक, इस फैसले पर रोक लगाने से मना कर दिया। इसके अतिरिक्त, मुख्य न्यायाधीश ने यह भी कहा कि कुछ उत्तेजित समलैंगिक युगलों की शादी के लिए तत्परता को इस फैसले पर रोक लगाए जाने का कारण नहीं बनाया जा सकता। परंतु इसके आधार पर सार्वजनिक स्तर पर, इस फैसले के विषय में जागरुकता बढ़ाने का काम ज़रूर किया जाना चाहिए[14] (इस फैसले में विवाह कानूनों के विषय में कोई टिप्पणी नहीं की गई है)। लेकिन इसके बावजूद, न्यायालय ने इस ज्योतिष को फैसले के विरुद्ध अपील करने का मौका दिया, हांलांकि वह उच्च न्यायालय में पहले चली प्रक्रियाओं में भागीदार नहीं रहा था। इसके अनुसरण में न्यायालय ने केन्द्रीय सरकार तथा नाज़ फाउन्डेशन को नोटिस भेजे कि वे अपनी प्रतिक्रियाएं, दस दिन के अंदर जमा करें[15]।

फिर 20 जुलाई को एक सुनवाई के बाद, जिसमें सभी पक्षों के वकील शामिल थे, न्यायालय ने ज्योतिष के आग्रह पर, फैसले पर कुछ समय के लिए रोक लगाने से इंकार कर दिया। मुख्यतः क्योंकि केन्द्रीय सरकार ऐसा करने के पक्ष में नहीं थी। मुख्य न्यायाधीश बालाकृष्णन ने केन्द्रीय सरकार को दस सप्ताह

13 द हिंदू, ''सैक्शन 377: सैन्टर मे सीक मोर टाईम टु फाईल रिस्पौंस,'' 20 जुलाई 2009: http://www.hindu.com/2009/07/20/stories/2009072060031000.htm

14 द हिंदू, ''सुप्रीम कोर्ट टेक्स अप पैटिशन अगेन्स्ट गे सैक्स,'' 10 जुलाई 2009 : http://www.hindu.com/2009/07/10/stories/2009071054981000.htm

15 डी.एन.ए. इंडिया, ''सैन्टर रिलीव्ड ऐज़ सुप्रीम कोर्ट इशूज़ नोटिस औन गे रूलिंग,'' 9 जुलाई 2009 :
http://www.dnaindia.com/india/report_centre-relieved-as-sc-issues-noticeon-gay-ruling_1272497

की अवधि के अंदर, इस फैसले के संबंध में अपना मत तैयार करने और जमा करने का समय दिया। कानून मंत्रालय को इस फैसले की विस्तृत व्याख्या तैयार करनी है, जिसे वे तीन मंत्रियों के एक सलाहकार समूह को जमा करेंगे (गृह, स्वास्थ्य एवं कानून)। यह सलाहकार समूह फिर अपनी संस्तुतियां कैबिनैट के समक्ष मतदान के लिए प्रेषित करेगा[16]।

सर्वोच्च न्यायालय के इस याचिका पर दिए गए फैसले के विषय में सतर्क तथा चौकन्नी आशा बनाया जाना ही सही होगा। हांलांकि केन्द्रीय सरकार ने अपने स्वरूप अनुसार, इस फैसले के विषय में अभी तक कोई प्रतिक्रया नहीं दी है, संकेत मिले हैं कि वह उच्च न्यायालय के इस फैसले का विरोध नहीं करेगी[17]। एक विशेष रूप से आशापूर्ण कदम में, केन्द्रीय कानून मंत्री वीरप्पा मौइली ने, हाल ही में उच्च न्यायालय के इस फैसले को ''अच्छी तरह से अध्ययन के आधार पर तर्कशील दस्तावेज़'' माना और यह भी स्वीकार किया कि धारा 377 ने पिछले समय में एक शोषक कानून का काम किया है। उन्होंने यह भी कहा कि कुछ औपनिवेशी कानून हमारे संविधान के अनुरूप नहीं हैं और न्यायालयों को अधिकार है कि वे मतभेद की स्थितियों में ऐसे कानूनों की पहचान कर सकें[18]।

वर्तमान समय में, जब तक सर्वोच्च न्यायालय नाज़ फैसले से अलग निष्कर्ष निकलने वाले किसी मामले की सुनवाई नहीं

16 टाईम्स औफ इंडिया, ''सैक्शन 377: कैबिनैट टु टेक फाईनल कौल औन गवर्नमैंट स्टैंड,'' 29 जुलाई 2009 : http://timesofindia.indiatimes.com/NEWS/India/Section-377-Cabinet-to-take-final-call-on-govt-stand-/articleshow/4832153.cms

17 डी.एन.ए. इंडिया, ''गवर्नमैंट अनलाईक्ली टु औपोज़ डैल्ही हाई कोर्ट गे वर्डिक्ट,'' 29 जुलाई 2009 : http://www.dnaindia.com/india/report_government-unlikely-tooppose- delhi-hc-gay-verdict_1278029

18 डी.एन.ए. इंडिया, ''ऐन्टी गे लौ वौज़ ऐन इंस्ट्रुमैंट औफ ऐक्सप्लौईटेशन, सेज़ मौइली,'' 2 अगस्त 2009 : http://www.dnaindia.com/india/report_anti-gay-law-was-aninstrument-of-exploitation-says-moily_1279130

करता या किसी अन्य उच्च न्यायालय के किसी अन्य फैसले द्वारा धारा 377 की कोई अन्य व्याख्या नहीं की जाती, तब तक समलैंगिक तथा अन्य यौनिकताओं के लोग भारत के संपूर्ण नागरिक हैं।

क्रिया मुख्य रूप से महिलाओं के मानव अधिकारों और सभी के यौन अधिकारों के मुद्दों पर कार्य करती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए क्रिया नेतृत्व निर्माण, सामाजिक आंदोलनों को प्रभावित करने और विमर्श को आगे बढ़ाने और इनके हक़ में नीतियाँ बनाने के लिए माहौल तैयार करती है। इसके साथ ही क्रिया इन मुद्दों पर समुदाय, ज़िला, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर नीतियों को प्रभावित करने के लिए वैचारिक, सैद्धांतिक तथा व्यवहारिक क्षमता प्रदान करने का प्रयास भी कर रही है।

यह प्रकाशन क्रिया के प्रोग्राम, काउंट मी इन, का हिस्सा है। यह प्रोग्राम सामाजिक बहिष्कार के मुद्दों को उठाता है। इसके तहत हम खासकर यौनकर्मियों, लेस्बियन, विकलांग महिलाओं और ट्रांसजेंडर व्यक्तियों के हाशिएकरण को सम्बोधित करते हैं।

यह प्रकाशन नाज़ फाउण्डेशन फैसले की बेहतर समझ के लिए प्रकाशित किया गया है। इस प्रकाशन का उद्देश्य इस फैसले के ऊपर रीसर्च, समालोचना और विचार को आगे बढ़ाना है। इस प्रकाशन के हर अंश का पुनः प्रकाशन फेयर डीलिंग सिद्धांतों के अनुसार किया गया है। गैर व्यापारिक और शैक्षिक उद्देश्यों के लिए इसका वितरण और उचित आभारोक्ति के साथ पुनः प्रकाशन किया जा सकता है।

crea

7, दूसरी मंज़िल, जंगपुरा बी, मथुरा रोड़, नई दिल्ली – 110 014, भारत
फोन नं. : 91 11 24377707, 24378700/01 • फैक्सः : 91 11 24377708
ई–मेल : crea@vsnl.net • वेबसाईट : www.creaworld.org